देश और निवासी- 27



# फीजी

# फीजी

फीजी के साथ लेखक की तीन पीढ़ियों का सम्बन्ध है। इनके पिता जी तथा पितामह ने फीजी के इतिहास के निर्माण में योग दिया है और लेखक ने उसकी संस्कृति, विदेशनीति तथा स्वाधीन फीजी के निर्माण में।

फीजी में, भारत के उच्चायुक्त की स्थिति के पाँच वर्षों में, आपने वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य का अवलोकन, सामाजिक विकास का अध्ययन, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक उपलब्धियों का आकलन और भारत-फीजी संबंधों की मधुर संरचना का आयोजन किया था।

फलत: "फीजी" नामक प्रस्तुत कृति में, वहाँ की भौगोलिक स्थिति का विशद् चित्रण, वहाँ की प्राकृतिक सुषमा का गौरव-गायन, वहाँ के उद्योग-धंधों का विशेष उल्लेख, वहाँ की आर्थिक दशा का विवेचन, उस देश में भारतीयों के प्रवेश का इतिहास, वहाँ का अपना इतिहास, उनका अपना सामाजिक-सांस्कृतिक उत्कर्ष का आख्यान, वहाँ की स्वाधीनता की कहानी, रातू सर एडवर्ड द्वारा आधुनिक फीजी के निर्माण की कथा और भारत फीजी मैत्री संबंध स्थापना का वर्णन हुआ है।

फीजी की सभ्यता, संस्कृति, ऐतिहासिक विधि, धर्म, दर्शन तथा अंग्रेजी साम्राज्य के औपनिवेशिक शोषण की प्रामाणिक जानकारी की दृष्टि से प्रस्तुत कृति का अपना स्थान है।

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

# फीजी

भगवानसिंह
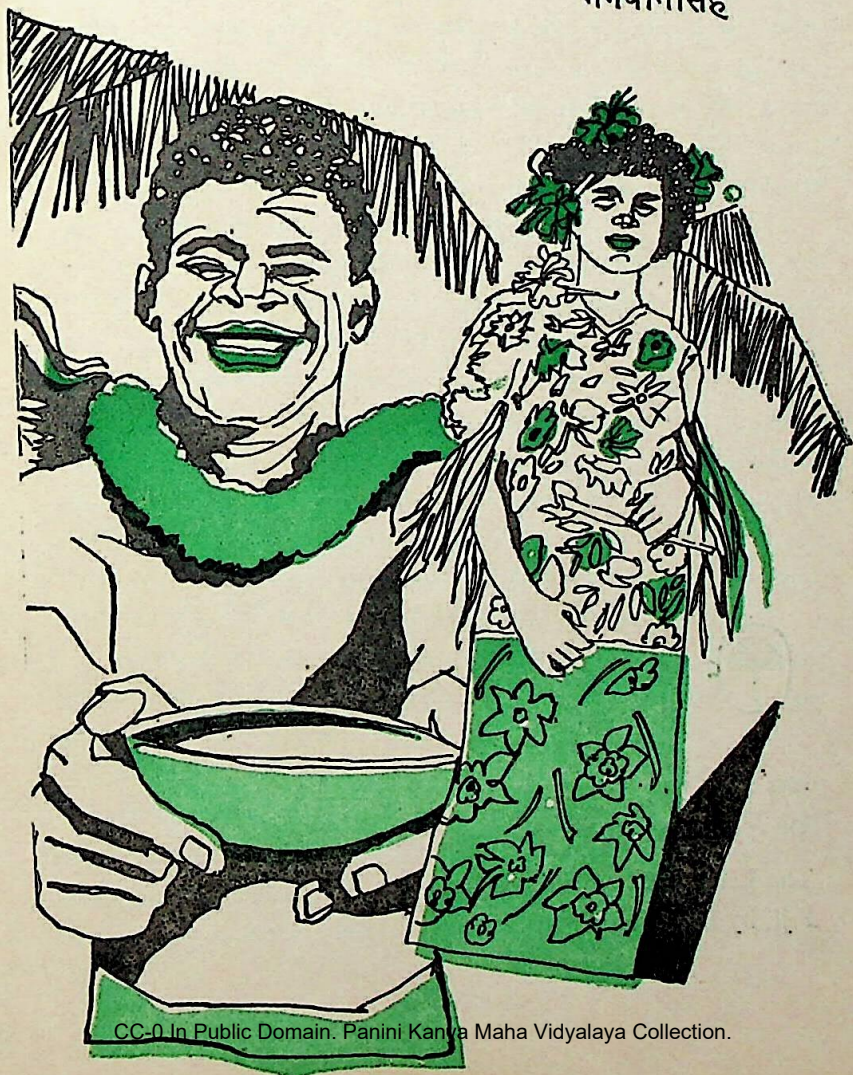
देश और निवासी माला–27


**फीजी**

अंतःसज्जा : प्रणव चक्रवर्ती

मूल्य : छ : रुपए (6-00)
तीसरा संस्करण : 1983 © राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
The Land and Peoples Series-27
Fiji, by Bhagwan Singh

# प्रस्तावना

मेरा बचपन से ही फीजी के प्रति विशेष आकर्षण रहा है। यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि मेरे दादा श्री रामचन्द्र सिंह भारत से यहां गिरमिट प्रथा के अन्तर्गत गए थे। मेरे पूज्य पिता श्री वीरी सिंह का जन्म फीजी में ही हुआ। वे कुछ समय फीजी की सिविल सर्विस में भी रहे और जन्मान्त फीजी सरकार की पेंशन भी लेते रहे। इसी कारण मैं फीजी को अपनी पितृभूमि मानता हूँ और इस बात का कई मौकों पर इजहार भी कर चुका हूँ। वल्कि जव मैं सभाओं के मंच से फीजी को पितृभूमि और भारत को मातृभूमि कहता तो तालियों की गड़गड़ाहट के वीच सुख और संतोष की लहर-सी दिखाई देती है।

पंडित वनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा लिखित पं० तोताराम सनाढ्य की पुस्तक "फीजी में मेरे 21 वर्ष" ने तो मेरे फीजी-दर्शन की उत्कण्ठा को जीवन-भर जारी रखा। यह पुस्तक वहुत दिनों तक जब्त रही थी और मुझे याद है कि मैं वचपन में किस प्रकार छुप-छुपकर इस पुस्तक को पढ़ा करता था। तभी से मेरे मन में फीजी आने और फीजी के विषय में कुछ लिखने की साध थी। फीजी आने का मौका मुझे पहली वार सन् 1964 में मिला, जब मैं एयर इण्डिया द्वारा फीजी-भारत सम्वंधों की नई शृंखला स्थापित करने के सम्बन्ध में वहां गया था। दूसरी वार टी बोर्ड के अध्यक्ष की हैसियत से यहां 1966 में आने का अवसर मिला। इसके वाद मुझे भारत के हाई कमिश्नर की हैसियत से यहां आने का सौभाग्य मिला और मैंने फीजी के इन रमणीक द्वीपों का पूरी तरह अवलोकन किया।

मैंने अपनी व्यक्तिगत जानकारी के आधार पर इस पुस्तक में सही और सच्ची जानकारी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। यदि पाठक इससे कुछ लाभान्वित हो सकें तो मैं अपनी सफलता मानूंगा।

मैं अपनी टिप्पणी समाप्त करने से पहले हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्ज़ के प्रति अपना आभार प्रकट करना चाहता हूँ, जिनकी प्रेरणा और सहायता से मेरे विदेश में रहते हुए भी यह पुस्तक प्रकाशित हो सकी थी। यदि वह बार-बार याद न दिलाते और न उकसाते तो शायद यह सम्भव भी न होता। जबकि कागज और मुद्रण खर्च वहुत बढ़ गया है और साधारण प्रकाशक

ऐसे समय में कोई नई योजना हाथ में लेने की आसानी से हिम्मत नहीं कर सकता। उन्हीं के आग्रह से यह संशोधित संस्करण के रूप में पुनः प्रकाशित है। इस संस्करण में एक और अध्याय जोड़ दिया गया है, जिसमें फीजी के वदलते हुए तेवर का जिक्र है।

फीजी के आसपास के उपनिवेश अब स्वतंत्र राज्य हो चुके हैं, जिन्होंने आजादी की स्वच्छ और धवल पोशाक के साथ अपना नया नामकरण संस्कार भी कर लिया है। उसका समावेश भी इसमें करने का प्रयत्न किया गया है।

अन्त में मैं अपने सहयोगी श्री परशुराम शर्मा और श्री रामप्रकाश को भी हृदय से धन्यवाद देता हूँ, जिनके सहयोग से मैं अपनी राजनयिक व्यस्तता के होते हुए भी इस पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार कर सका हूँ। ——भगवान सिंह

## संक्षिप्त परिचय

भगवान सिंह, आई. ए. एस. (अ. प्रा.)
जन्म : ग्राम-जैंगारा, जनपद-आगरा, (उ. प्र.)
शिक्षा : ग्राम पाठशाला, विक्टोरिया हाई स्कूल आगरा, गवर्नमेण्ट हाई स्कूल आगरा, आगरा कालिज, आगरा।

महत्त्वपूर्ण राजकीय सेवायें : भारतीय सेना में लेफ्टीनेण्ट तथा कैप्टन (1941-1947)
जिलाधीश, बुलन्दशहर।
डिप्टी कमिश्नर, रायबरेली, फैजाबाद।
जॉइण्ट सैक्रेटरी, खाद्य एवं कृषि मंत्रालय, भा. स., नई दिल्ली।
जॉइण्ट सैक्रेटरी, पुनर्वास मंत्रालय, भारत सरकार. कलकत्ता।
चेयरमैन, टी. बोर्ड. भा. स. कलकत्ता।
अतिरिक्त सचिव, विदेशी व्यापार, भा. स., नई दिल्ली।
फीजी में भारत के उच्चायुक्त (1971-1976)

कृतियाँ : फीजी, रत्नगर्भा, भारतीय चाय, उजाले अपनी यादों के।

क्रम


| | |
|---|---|
| देश, जहां सबसे पहले सवेरा होता है | 9 |
| भारतीयों के प्रवेश की कहानी | 16 |
| इतिहास : एक नज़र में | 21 |
| राजधानी और नगर | 31 |
| सैलानियों का स्वर्ग | 39 |
| उद्योग-धन्धे | 47 |
| संस्कृतियों का संगम | 54 |
| भाषा और साहित्य | 70 |
| भारत और फीजी | 76 |
| आधुनिक फीजी के निर्माता | 81 |
| फीजी किधर ? | 92 |

फीजी की वेशभूषा में दो स्त्रियाँ

1

# देश, जहां सबसे पहले सवेरा होता है

भूमध्य रेखा और मकर रेखा के बीच दक्षिण प्रशान्त के नीले प्रांगण में छोटे-बड़े अनेक दीपसमूह कमल की तरह जहां-तहां खिले हुए हैं। इन्हीं में एक द्वीपसमूह फीजी नीले गगन के तले, प्रशान्त की लहरों के बीच 15 डिग्री से 22 डिग्री दक्षिण अक्षांश के मध्य, पश्चिम में 177 डिग्री से पूर्व में 174 डिग्री रेखांश तक फैला हुआ है। पहले यह देश ब्रिटिश साम्राज्य का एक उपनिवेश था। परन्तु 10 अक्तूबर, 1970 से यह आजाद हो गया है। इसका कुल क्षेत्रफल 2,74,000 वर्गमील है, जिसमें से 97 प्रतिशत भाग जल और केंवल 3 प्रतिशत भाग स्थल है। स्थल भाग का क्षेत्रफल 7022 वर्गमील है।

यह बताना आसान नहीं है कि फीजी द्वीपसमूह में कुल कितने द्वीप और द्वीपिकाएं हैं। इनकी संख्या 300 से 500 तक बताई जाती है, यदि इनमें बहुत छोटे-छोटे चट्टानी द्वीपों और समुद्र में स्थित मिट्टी के टीलों को अलग-अलग द्वीप और द्वीपिकाओं की कोटि में शामिल कर लिया जाए। फिर भी 300 से अधिक द्वीप ऐसे हैं जिनका क्षेत्रफल एक मील या उससे अधिक है। लगभग एक सौ द्वीप स्थायी रूप से आबाद हैं, हालांकि बहुत-से दूसरे द्वीपों में भी फिजियन लोग कुछ दिनों के लिए जाकर रहते हैं और वहां रहकर मछली पकड़ते हैं या नारियल इकट्ठे करते हैं।

सबसे बड़ा द्वीप है वीतीलेवू (Viti Levu), जिसका क्षेत्रफल 4011 वर्ग-मील है। उसमें लगभग साढ़े तीन लाख लोग रहते हैं। वनुआलेवू (Vanua Levu) दूसरे नम्बर का द्वीप है, जिसका क्षेत्रफल 2137 वर्गमील और आबादी लगभग 85 हज़ार है। इसके बाद तेवयूनी (Taveuni), कन्दावू (Kadavu) आदि द्वीपों की बारी आती है। रम्बी (Rabi), बेंगा (Bega), मलोली (Maloli) आदि छोटे द्वीप हैं। इनके अलावा कुछ टापुओं के समूह हैं, जिनमें

मुख्य लोमाईवीती (Lomaiviti), लाऊ (Lau), यसावा (Yasawa), मौआला (Moala), रोतुमा (Rotuma) आदि हैं। फीजी द्वीप समूह के पूर्व में सबसे पास का द्वीप समूह तोंगा (Tonga) का है, जो स्वतन्त्र राष्ट्र है। तोंगा के महाराजा भारत की राजकीय यात्रा कर चुके हैं। मुझे भी उनके साथ रहने का अवसर मिला था। पश्चिम में फीजी का निकटतम पड़ोसी द्वीपसमूह न्यू हिब्राइडीज़ (New Hebrides) है।

फीजी का सबसे नजदीकी महाद्वीप आस्ट्रेलिया है। फीजी की राजधानी सूवा (Suva) से आस्ट्रेलिया के बन्दरगाह सिडनी की दूरी 1,738 मील और न्यूज़ीलैंड के बन्दरगाह आकलैंड की दूरी 1,148 मील है। भूमध्य रेखा से फीजी की दूरी 1100 मील है।

फीजी द्वीप समूह के पूर्व में सबसे नजदीक द्वीप समूह तोंगा का है जो कि एक स्वतन्त्र राष्ट्र है। तोंगा के राज्य की दो विशेषताएं हैं, जहां एक ओर वहां के टापुओं पर किसी भी विदेशी का कभी भी आधिपत्य नहीं रहा, दूसरा जिसपर तोंगा के लोगों को बड़ा गर्व है, वो है उनके राज्य का लिखित विधान जो अपनी एक शताब्दी पूर्ण करके पहला शतक पूरा करने वाला है। इस संविधान में सदैव वहां के महाराजा ही मानवीय अधिकारों के संरक्षक रहे हैं। तोंगा के महाराज संसार के उन इने-गिने महाराजाओं में हैं, जिनका आधिपत्य प्रत्येक गांव का निवासी स्वतः स्वीकार करता है। तोंगा के महाराज की भारत की प्रथम राजकीय यात्रा 1971 में हुई, जिसमें मुझे उनके बहुत ही करीब आने का अवसर मिला। उनके परिवार महाराज कुमार और महाराज कुमारी से भी हमारा पारिवारिक संपर्क बना, यहां तक कि महाराज कुमारी के विवाह में राजकुमारी परिवार की ओर से वर के स्वागत में परम्परागत नृत्य में शामिल हुई थीं और इस प्रकार तोंगा और भारतीय सम्बन्धों में एक नई कड़ी जुड़ी। पश्चिम में फीजी का निकटतम पड़ोसी द्वीपसमूह न्यू हिब्राइडीज़ है। यह अब एक स्वतन्त्र राज्य है और वनआतू गणराज्य कहलाता है, जो प्रशांत के प्रगतिशील देशों में अग्रणी समझा जाता है। वनआतू गणराज्य सोलोमन राज्य तथा पपुआन्यूगिनी और अंशतः फीजी मलनेशियन जाति के लोगों से बसा है।

भौगोलिक स्थिति के हिसाब से फीजी को एक बहुत बड़ा गौरव यह प्राप्त हुआ कि अंतर्राष्ट्रीय तिथिरेखा यानी 180वीं मेरीडियन रेखा फीजी के बीच से

गुजरती है। परन्तु इस रेखा को मोड़कर फीजी के एक ओर से गुज़ारा गया है, क्योंकि ऐसा न करने पर फीजी के आधे भाग में एक तारीख और दूसरे आधे भाग में दूसरी तारीख माननी पड़ती। परन्तु फिर भी यह रेखा फीजी के एक छोटे हिस्से को विभाजित करती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि संसार में सबसे पहले सवेरा फीजी में ही होता है।

फ़ीजी के द्वीप तीन प्रकार से बने हैं। कुछ ज्वालामुखियों के विस्फोट से बने हैं तो कुछ मूंगे की चट्टानों से और कुछ चूने के पत्थर से। जो बड़े-बड़े द्वीप हैं वे कभी ज्वालामुखी विस्फोट से ही बने थे, परन्तु बाद में उनकी बनावट में मूंगे और चूने के पत्थर ने भी मदद की। मूंगे की चट्टानों से बने टापू खेती और वनस्पति की दृष्टि से उपयोगी नहीं होते, परन्तु सैलानियों के विशेष आकर्षण की वस्तु हैं। वे मछलियों के भंडार हैं और सीपियां, शंख, छोटे मोती, आदि इकट्ठे करने के लिए बहुत उपयोगी हैं। इन टापुओं को 'एटोल' कहते हैं। फीजी में 'वाइलांगिलाला' नामक एटोल सबसे प्रसिद्ध है। यह एटोल लाऊ द्वीपों के उत्तर में स्थित है।

फीजी के चार बड़े द्वीपों यानी वीतीलेवू, वनुआलेवू, तेवयूनी और कन्दावू के बीच के भाग पहाड़ी हैं और समुद्र के किनारे के मैदान खेती के लिए उपयोगी हैं। वीतीलेवू में सबसे ऊंची पहाड़ी चोटी माउण्ट विक्टोरिया है, जिसकी ऊंचाई 4,341 फुट है। इसके अलावा 3,000 फुट से ऊंची 29 चोटियां और हैं। रेवा (Rewa) और सिगाटोका (Sigatoka) नदियां माउण्ट विक्टोरिया से निकलती हैं। रेवा, नावुआ (Navua), सिगाटोका आदि बड़ी नदियों के मैदान और उत्तर पश्चिमी भाग की समतल भूमि खेती की दृष्टि से बहुत उपयोगी है।

सिंगाटोका की घाटी फल-फूल तथा सब्जी के लिए बहुत ही मशहूर है। प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ इस घाटी में तम्बाकू और पैशन फ्रूट आदि की पैदावार बहुतायत से होती है। बहुत सालों तक यह घाटी सिर्फ सिगतोंगा शहर से आने वाली कच्ची सड़क से मिलती थी, परन्तु अब इस सड़क को ऊंची-ऊंची पहाड़ियों के बीच काटकर पश्चिमी जिलों से जोड़ दिया गया है, जिससे फीजी की इस मनोरम घाटी की झलक सारे सैलानियों को मिल सके। साथ ही यहां की पैदावार लोतोका और नान्दी की मंडियों में आसानी से पहुंच सके।

वनुआलेवू के पहाड़ वीतीलेवू के पहाड़ों से नीचे हैं। नसोरोलेवू वनुआलेवू का सबसे ऊंचा पहाड़ है, जिसकी ऊंचाई 3386 फुट है। तेवयूनी का सबसे

ऊंचा पहाड़ उलूइंगालाऊ—जिसकी ऊंचाई 4040 फुट है, फीजी-भर में दूसरे नम्बर का सबसे ऊंचा पहाड़ है। इसके ऊपर फैली हुई है एक मनोरम झील जिसके तांगीमोदिया नामक फूल संसार भर में और कहीं नहीं पाए जाते। ऊपर चढ़ने का रास्ता दुर्गम है। कन्दावू द्वीप भी पहाड़ी है। तेवयूनी और कन्दावू दोनों द्वीपों के मैदान बहुत बड़े नहीं हैं।

फीजी के पहाड़ों की विशेषता यह है कि ये दूर से ही सुहावने नहीं होते, बल्कि पास आने पर और ऊपर चढ़ने पर भी उतने ही रमणीय और आनन्ददायक हैं। चारों ओर भांति-भांति के फलों और फूलों की सुगन्धि भोले-भाले ग्रामीणों और वनवासियों को मुग्ध करती है। यहां के जंगल उपयोगी काठ से भरे पड़े हैं। लाखों डालर का काठ विदेशों को निर्यात किया जाता है। एक ज़माना था जब इन जंगलों में चंदन के पेड़ भी बहुतायत से हुआ करते थे, परन्तु विदेशी व्यापारियों ने अब उनकी एक खूंटी भी नहीं छोड़ी है। अब फिर कुछ नई किस्म के चन्दन के पेड़ लगाने की कोशिश की जा रही है।

फीजी के अनेक द्वीप ज्वालामुखियों के विस्फोटों की देन हैं। परन्तु इस समय यहां कोई भी ऐसा ज्वालामुखी नहीं है जो आग या लावा उगलता हो। इस बात के प्रमाण मौजूद हैं कि वे कुछ ही समय पहले तक सक्रिय थे। सूवा के पास स्थित रामटेक जिसे 'जोस्क का अंगूठा' (Joske's Thumb) भी कहते हैं, इसका उदाहरण है। इसी प्रकार ओवालाऊ (Ovalau) द्वीप की लोवानी घाटी और उसके चारों ओर की ऊंची-ऊंची चोटियां भी किसी बड़े ज्वालामुखी के अवशेष हैं। यहां भूचाल आते तो हैं, पर बहुत अरसे के बाद और उनमें इतनी तेज़ी नहीं होती कि उनसे कोई बड़ा नुकसान हो सके।

ज्वालामुखियों के कारण ही फीजी में गरम पानी के झरने बहुत हैं। वनुआलेवू में नकामा (Nakama) और सावू-सावू (Savu-Savu) के गरम झरने बहुत प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार वीतीलेवू, लोमाइवीती और लाऊ द्वीपों में भी छोटे-बड़े अनेक झरने हैं। इनमें से कुछ का पानी तो इतना गरम होता है कि उससे खाना भी पकाया जाता है, गरम पानी से नहाने का मज़ा तो है ही।

फीजी का मौसम सदाबहार है। यहां न तेज़ सर्दी पड़ती है और न तेज़ गर्मी ही। वर्ष-भर एक-सा सुहावना मौसम रहता है। भारत की तरह यहां अलग-अलग चार या छह ऋतुएं नहीं होतीं। मुख्यतः वसन्त और ग्रीष्म दो ही ऋतुएं

फलों से लदा फीजीवासी

होती हैं और गर्मी में गर्म झोंके या लू नहीं चलती। इसी तरह जिस मौसम को यहां सर्दी का मौसम कहा जाता है, उसमें भी गरम कपड़ों की जरूरत नहीं पड़ती। उस समय लोग शौकिया तौर पर हलके गर्म या ट्रापिकल कपड़े पहनते हैं। परन्तु यहां वर्षा की भरमार है। साल-भर थोड़ी-बहुत वर्षा होती ही रहती है। वीतीलेवू का पूर्वी भाग, जहां फीजी की राजधानी सूवा स्थित है, वर्ष-भर बराबर गीला रहता है। सूवा को फीजी का चेरापूंजी कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। यहां वर्ष-भर में कोई 150 इंच से भी अधिक वर्षा होती है। यहां का मौसम गिरगिट की तरह रंग बदलता है। अभी सुहावनी धूप छाई है तो आधे घंटे

वाद ही वादल घिर आते हैं और सब कुछ गीला कर जाते हैं। पश्चिमी भाग का मौसम अलवत्ता सूखा रहता है, परन्तु इतना सूखा भी नहीं जितना हम भारतवासी समझते हैं। यहां भी वर्ष में 70 से 75 इंच वर्षा होती है।

तटीय इलाकों में तापमान गर्मी के मौसम में अधिक से अधिक 95 डिग्री फारेनहाइट और सर्दी के मौसम में कम से कम 60 डिग्री फारेनहाइट रहता है। हां, नन्दारीवातू (Nadarivatu) स्थान का जलवायु कभी-कभी घट कर 60 डिग्री से भी कुछ नीचा हो जाता है। यह स्थान समुद्र तल से 2,700 फुट की ऊंचाई पर है। यहां लोगों ने छुट्टियां मनाने के लिए आरामघर बना रखे हैं। नन्दारीवातू को यहां का शिमला कहा जा सकता है और वास्तव में फीजी के दूसरे नम्वर का शहर लौतोका (Lautoka) में शिमला नामक मुहल्ला आवाद किया गया है। जिसका हर मकान टीले पर है।

फीजी प्रशान्त महासागर के ऐसे भाग में स्थित है, जहां के लोगों को समय-समय पर तूफानों के रूप में दैवी प्रकोप का सामना करना पड़ता है। इन तूफानों के दौरान 100 से 120 मील प्रति घंटे की रफ्तार से आंधियां चलती हैं और सारा जीवन अस्तव्यस्त हो जाता है। लकड़ी और घासफूस के मकान पूरी तरह हिल जाते हैं। पेड़-पौधे टूटकर धराशायी हो जाते हैं और खड़ी खेती देखते-देखते नष्ट हो जाती है। प्रशांत सागर अपनी मर्यादा त्यागकर वस्ती में घुस आता है। मछलियां सूवा शहर की दुकानों में तैरने लगती हैं। लोग घर वंद करके भीतर बैठ जाते हैं और उस घड़ी का इंतजार करते हैं जब प्रकोप शांत हो जाएगा। और उसके बाद एक साथ ही महंगाई का दौर शुरू हो जाता है। कोई नहीं जानता कि ये विनाशकारी तूफान कव-कव आएंगे, अलवत्ता फीजी के मौसम कार्यालय से इसके आने की चेतावनी कुछ समय पहले दे दी जाती है। पिछले पचास वर्षों में सूवा शहर में ऐसे चार तूफान आ चुके हैं—मार्च 1910 में, फरवरी 1941 में, जनवरी 1952 में और अक्तूबर 1972 में। आखिरी तूफान के समय इन पंक्तियों का लेखक स्वयं सूवा में था और उसने उसकी सारी विनाश लीला अपनी आंखों से देखी थी। भगवान ऐसी घड़ी फिर न लाए!

फीजी के समुद्र मछलियों के भंडार हैं। इसलिए मछली यहां का मुख्य भोजन और मछली पकड़ना गांवों में आजीविका का मुख्य साधन है। कुछ द्वीपों के जल-प्रांगण में कछुओं की भरमार है। कंदावू के कछुए सैलानियों का स्वागत करते हैं।

यहां का समुद्रतट वड़ा मनोरम है। उसे विकसित करके कहीं-कहीं तो बहुत ही सुन्दर बना दिया गया है। समुद्र तट के किनारे स्थान-स्थान पर भांति-भांति के होटल बने हुए हैं, जहां सैलानी चमचमाती धूप और समुद्री स्नान का आनन्द लेते हैं।

भौगोलिक स्थिति, जलवायु, वनस्पति और भौतिक सुख-सुविधाओं की दृष्टि से फीजी रहने योग्य एक बहुत बढ़िया देश है।

# भारतीयों के प्रवेश की कहानी

सौ साल से भी अधिक वर्ष हुए—कलकत्ता के प्रसिद्ध वन्दरगाह से एक जहाज़ रवाना हुआ। जहाज का नाम था लेवनीदास (Leonidas)। परन्तु जहाज़ के मुसाफिरों को यह मालूम नहीं था कि उन्हें कहां ले जाया जा रहा है। उन्हें तो बस इतना-भर मालूम था कि वे जहाज़ से एक ऐसे देश में ले जाये जायेंगे, जहाँ उन्हें भरपूर मज़दूरी मिलेगी। खेती करने के लिए उनके पास ज़मीन होगी। रहने के लिए अच्छा मकान होगा। खाने-पीने की कोई तकलीफ नहीं होगी। वहां जब काफी पैसे इकट्ठे हो जाएंगे तो वे वापस अपने घर लौट सकेंगे। लौटने के लिए भी उनको इसी तरह मुफ़्त जहाज़ मिलेगा और वे वापस आकर गांव में भाई-बंधुओं के साथ, अपने कमाए धन से, अपनी जाति-विरादरी में आराम से ज़िंदगी वसर कर सकेंगे। उनमें कुछ शौकीन तबीयत के नौजवान भी थे, जो विना पैसे जहाज़ की सवारी के लालच में उसमें आ बैठे थे और ज्यों-ज्यों जहाज़ आगे बढ़ता जा रहा था, उन्हें अपने घर लौट जाने की बेचैनी हो रही थी। उन्हें पता नहीं था कि अब वे अपने घरबार से दूर, अपनी मातृभूमि को सदा के लिए छोड़ कर वहुत दूर के किसी टापू में ले जाये जाएंगे, जहां से वापस आना उनके वस की बात नहीं होगी।

कुछ लोग अपने भविष्य की योजनाएं बनाने में ही लगे थे। जहाज़ हिन्द महासागर की पहाड़ जैसी उत्ताल तरंगों पर चढ़ता-उतरता अपने मुसाफिरों के विचारों से अनजान मन्थर गति से अपनी मंज़िल की ओर बढ़ता चला जा रहा था। दिन के बाद रात और फिर रात के बाद दिन बीतते गए। एक महीना बीता, दूसरा भी बीत गया। ठीक तीन महीने बारह दिन बाद यह जहाज़ सिंगापुर, बोर्नियो इत्यादि टापुओं से गुज़रता हुआ 5 मई, 1879 को लेवूका नामक बंदरगाह पर किनारे लगा। लेवूका उस समय फीजी की राजधानी था। यह था भारतीयों का फीजी में पहला प्रवेश।

नगाड़े पर चोट

लेवनीदास जहाज़ में सर्वप्रथम कुल 481 भारतीय औरत-मर्द शर्त-वन्द कुली प्रथा (इडेंचर सिस्टम) के अंतर्गत मज़दूर बनाकर लाए गए थे। उस समय फीजी में बहुत वड़े पैमाने पर गन्ने की खेती की जाने लगी थी। गन्ने के वड़े-वड़े फार्म होते थे, जिनके मालिक गोरे लोग थे। इन फार्मों में काम करने के लिए मज़दूरों की सख़्त ज़रूरत थी। स्थानीय काईवीती लोग स्वतंत्र प्रकृति के होने के कारण किसी शर्त से बंध-कर कड़ी मेहनत नहीं करना चाहते थे। इसलिए गोरे मालिकों को आस-पास के टापुओं से मज़दूर बुलाने पड़े। परन्तु ये लोग भी उनकी इच्छा के अनुकूल काम नहीं कर सके। इन्हीं दिनों मारीशस, नैटाल, ट्रिनिडाड आदि अनेक ब्रिटिश उपनिवेशों में खेती का काम करने के लिए भारतीय मज़दूर भेजे जा चुके थे और उनकी मेहनत और वफादारी की शोहरत देश-विदेश में फैल चुकी थी। इसलिए गोरे मालिकों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए सन् 1916 तक हर साल हज़ारों भारतीय स्त्री-पुरुष उसी तरह जहाज़ों में भरकर फीजी लाए जाते रहे। शर्त-वन्द कुली प्रथा अगले चालीस वर्षों तक जारी रही और इस दौरान भारत से कोई त्रेसठ हज़ार से भी अधिक लोग कुली या मज़दूर बनकर फीजी आए। इस कुली प्रथा के अन्तर्गत आने वाले मज़दूर को दस वर्ष तक गन्ने के खेतों में मज़दूरी करनी पड़ती थी। उसके बाद वे चाहें तो भारत वापस जा सकते थे या फीजी में अपना स्वतन्त्र काम-धन्धा कर सकते थे। मज़दूरी की अवधि समाप्त हो जाने के बाद केवल पच्चीस हज़ार लोग ही वापस भारत गए और बाकी लोग किसी न किसी कारण से यहीं रह गए। उन्हीं में थे मेरे दादा श्री रामचन्द्र सिंह।

भारतीयों से पहले यहां जो मज़दूर आए उन्हें 'कनाका' कहते थे। ये प्रशान्त के द्वीपों में रहनेवाले वहां के मूल निवासी थे। 'कनाका' मलनेशियन भाषा का शब्द है। इसका अर्थ है काला व्यक्ति। सोलोमन द्वीप समूह न्यू हैब्रिडीज़, वनुआतू गिलवर्ट किरीवाश और एलिस देणें कौन, सान्ता क्रूज़, वेन्वस, लॉयल्टी आदि द्वीपों में ये वसे हुए थे।

15 अगस्त, 1863 को आस्ट्रेलिया के व्यवसायी रोबर्ट टाउन्स ने पहली वार कनाका मज़दूरों को खरीदकर ब्रिसवन में काम करने के लिए मंगाया। ये 'डॉन जुआन' नामक जहाज़ पर लाए गए। मज़दूरों को जहाज़ पर चढ़ाने का काम लेवीं नामक एक फ्रांसीसी को दिया गया था। कनाका मज़दूरों से टाउन्स को

भारी लाभ हुआ। आस्ट्रेलिया के दूसरे व्यवसायी भी कनाका मज़दूरों की मांग करने लगे। लेवीं ने 26 एप्रिल, 1867 को 'ब्रिसवन कूरियर' द्वारा सभी व्यवसायियों को सूचित किया कि वह उन्हें भारी संख्या में कनाका मज़दूर दे सकता है। एक मज़दूर की कीमत सात पौंड होगी। जनवरी 1901 में आस्ट्रेलिया ने जब 'कामन वेल्थ आइलैंड्स लेबरर्स एक्ट' बनाकर सभी कनाका मज़दूरों को वापस उनके द्वीपों में भेजने के लिए व्यवसायियों को बाध्य किया, उस समय करीब साठ हज़ार कनाका मज़दूर आस्ट्रेलिया में काम कर रहे थे।

आस्ट्रेलिया के बाद दूसरा देश फीजी था, जिसमें कनाका मज़दूरों की बिक्री तेज़ी पर थी। आस्ट्रेलिया तथा दूसरे देशों के व्यवसायी और जमींदार फीजी में बस गए थे। इन्हें भी सस्ते मज़दूरों की ज़रूरत थी। ये भी कनाका मज़दूरों को खरीदने के लिए उन समुद्री डाकुओं से बातचीत करने लगे, जो विभिन्न द्वीपों में जाकर लालच देकर या जबरन वहां के मूलनिवासियों को जहाज़ पर लादते थे। इनमें पुरुष भी होते थे, स्त्रियां भी। किन्तु कनाका मज़दूर फीजी के बदले आस्ट्रेलिया जाना अधिक पसन्द करते थे, क्योंकि फीजी में इन्हें केवल तीन पौंड सालाना वेतन मिलता था और आस्ट्रेलिया में छह पौंड। फीजी में इन मजदूरों के साथ बहुत ही निर्दयतापूर्ण व्यवहार भी किया जाता था।

फीजी में कनाका मज़दूरों को बेचना ग़ैर-कानूनी नहीं था। इस काम के लिए केवल लेवूका स्थित ब्रिटिश कौंसल से लाइसेंस लेना पड़ता था। अनेक समुद्री डाकू तथा उनके जहाज़ इस व्यवसाय में लगे हुए थे। 'यंग आस्ट्रेलियन' नामक एक जहाज़ पर 230 पुरुष और 6 औरतें लेवूका लाए गए। इन्हें बारह सौ पौंड में बेचा गया। जिन समुद्री डाकुओं के पास लाइसेंस नहीं होता था, वे रेवा नदी में जहाज खड़ा करके मज़दूरों को बेचते थे। इन समुद्री डाकुओं में सबसे अधिक निर्दयी, दुश्चरित्र और बदनाम बुली हैस नामक एक अमेरिकन था। कैप्टन जोर्ज पामर के अनुसार आरंभ में गिलबर्ट किरीवाश (गिलबर्ट टापू समूह), जो अब किरीवाश देश है, से ज़्यादा मज़दूर फीजी में बेचे गए, जो ज़बर्दस्ती पकड़कर लाए गए थे।

इस संबंध में एडवर्ड मार्च ने, जो 1869 में फीजी में ब्रिटिश कौंसल नियुक्त किये गए थे, ब्रिटिश कॉलोनियल आफिस को लिखकर सूचित किया कि 1870 में फीजी में करीब दो हज़ार कनाका मज़दूर थे। इन्हें दो पौंड से तीन पौंड प्रति

वर्ष वेतन दिया जाता था। इनमें ज़्यादा न्यू हैब्रिडीज के थे, उसके वाद गिलवर्ट एण्ड एलिस के। एडवर्ड मार्च ने यह भी लिखा कि अगर फीजी के मूल निवासी कभी दंगा-फसाद करें तो उनके खिलाफ भी कनाका मज़दूरों को काम में लाया जा सकता है।

फीजी का शासन जव ब्रिटिश सरकार के हाथों में चला गया तव फीजी सरकार ने कनाका मज़दूर-सम्बन्धी काम अपने हाथों में ले लिया। मज़दूरों को लादे हुए जब कोई भी जहाज़ फीजी पहुंचता था, उस समय फीजी सरकार का इमीग्रेशन एजेंट और डाक्टर जहाज़ पर जाकर मज़दूरों को देखते थे। वाद में सरकार जहाज़ के कैप्टन को आठ पौंड प्रति मज़दूर के हिसाव से देती थी, अगर मज़दूर की उम्र सोलह वर्ष से कम हुई तो केवल चार पौंड। मज़दूर को तीन पौंड सालाना मजदूरी तथा भोजन और वस्त्र मिलते थे। जहाज़ से उतार कर मज़दूरों को एक डिपो में ले जाया जाता था,; वहां से उन्हें ज़मींदार ले जाते थे।

किन्तु ये कनाका मज़दूर फीजी में गन्ने की खेती के अयोग्य सिद्ध हुए। तब भारत से मजदूरों को मांगने की वात आरम्भ की गई। फीजी की सरकार ने एक अच्छा कार्य यह किया कि उसने कनाका मज़दूरों को फीजी से अपने द्वीपों में वापस जाने के लिए वाध्य नहीं किया। इनकी संतान फीजी में आज भी मौजूद है।

3

# इतिहास : एक नज़र में

यह निश्चित रूप से बता सकना कठिन है कि फीजी द्वीप समूह में जन-जीवन का संचार कब और कैसे हुआ। भूगर्भशास्त्रियों की राय है कि फीजी द्वीपसमूह उतना प्राचीन नहीं है जितना कि यूरोप या एशिया के कोई और देश। इतिहासकारों का मत है कि इंडोनेशिया यहां के लोगों का मूल उद्‌गम-स्थान है। पापुअन लोग सर्वप्रथम इंडोनेशिया से निकले और फीजियन दंतकथाओं के अनुसार वे फीजी तक आए थे। उनके बाद ईसापूर्व सात-आठ हज़ार वर्ष पहले, मलनेशियन लोग यहां बड़ी-बड़ी नावों में आए। उन्हें यह जगह अच्छी लगी और वे यहीं बस गए। ये लोग ही सम्भवत: यहाँ के मूल निवासी हैं। कुछ हज़ार वर्षों के बाद फीजी में पोलीनेशियन लोगों का आगमन हुआ। थोड़े ही समय में पोलीनेशियन लोग अपने पूर्ववर्ती मलनेशियन लोगों के साथ घुलमिल गए और एक नई संकर सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ। इसमें पोलीनेशियन जाति के गुण अधिक थे। जब यूरोपियन लोग यहां सर्वप्रथम आए तो उनका साक्षात्कार इन्हीं दो मूल जातियों के लोगों से या उनकी संकर सृष्टि से हुआ। फीजी के तटीय क्षेत्रों में और वीतीलेवू तथा वनुआलेवू के मुख्य द्वीपों के पूर्व में स्थित द्वीपसमूहों में पोलीनेशियन प्रभाव विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है और वीतीलेवू तथा वनुआलेवू के भीतरी भागों में मलनेशियन मूल के लोगों का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। विश्वास किया जाता है कि यूरोपियन लोगों के आने से कुछ सौ वर्ष पहले पोलीनेशियन लोगों का एक और दल यहां आया और अब अधिकांश फीजी-यन लोग उसे ही अपना मूल मानते हैं। पर कुछ विशेषज्ञों की राय इससे विपरीत हैं। इन नये मलनेशियनों ने पुराने मलनेशियनों से विवाह-संबंध स्थापित किए और बाद में मूल निवासियों के साथ घुलमिल गए।

फिजी द्वीपसमूहों में यूरोपियन लोगों का आगमन भी इत्तिफाक की बात थी। फीजी के बारे में यूरोपियन लोगों को बहुत कम जानकारी थी और वे इन द्वीपों

में घुसने के बजाय दूर से निकल जाना ही हितकर समझते थे। हालैंड निवासी एबल तासमान को इन द्वीपों की खोज करने वाला पहला यूरोपियन माना जाता है। तासमान के पास दो छोटे जहाज़ थे। उन्हीं में उसने बटाविया से मारीशस की यात्रा और तसमानिया तथा न्यूज़ीलैंड की खोज की। वह तोंगा भी पहुंचा था। जब वह अपनी वापसी यात्रा में बटाविया (जावा) को लौट रहा था तो वह 3 फरवरी, 1743 को फीजी द्वीपसमूह के एक छोटे द्वीप के पास मूंगे की चट्टानों की भूलभुलैया में फंस गया। पर सौभाग्य से अंत में उसने रास्ता निकाल ही लिया। इसी सफर के दौरान उसने तेवयूनी द्वीप के उत्तरी सिरे को देखा और लाऊ द्वीपसमूह के दिकोम्बिया द्वीप का भी चक्कर लगाया।

तासमान के बाद दूसरा यूरोपियन यात्री जो फीजी द्वीपों में आया, वह था सुप्रसिद्ध कैप्टेन जेम्स कुक। कुक ने अपनी प्रशान्त महासागर की दूसरी यात्रा के दौरान 2 जून, 1774 को वतोआ द्वीप देखा जो दक्षिणी लाऊ द्वीपसमूह का एक अंग है। परन्तु कैप्टेन विलियम ब्लाई वह पहला व्यक्ति था जिसने फीजी के अधिकांश प्रमुख द्वीपों को देखा। ब्लाई, कुक की तीसरी समुद्र-यात्रा में उसका साथी था। ब्लाई को यह मालूम था कि फीजी के मूल निवासी नरभक्षी हैं और इसीलिए वह उनके संपर्क से बचकर निकल गया। उसने अपने जहाज़ में से ही फीजी के अनेक द्वीपों को देखा और लंदन पहुंचकर इन द्वीपों का नक्शा तैयार किया। इसी कारण कुछ समय तक इन द्वीपों को ब्लाई द्वीपसमूह भी कहा जाता रहा।

ब्लाई के बाद 1797 में विल्सन नामक यूरोपियन यात्री ने फीजी के कुछ द्वीपों, विशेषतः वनुआम्बलाऊ की खोज की। वह अपने मिशनरी जहाज़ 'डफ' में लाऊद्वीपसमूह होते हुए लंदन लौट रहा था।

फीजी द्वीपसमूह की खोज का विवरण अधूरा रहेगा, यदि उसमें रूसी अन्वेषक बेल्लिगशोसेन (Belling Shausen) का उल्लेख न किया जाए। उसके नेतृत्व में 18 अगस्त, 1820 को 'वोस्तोक' और 'मिरनी' नामक दो जहाज़ों में एक रूसी दल ने ओनो और तुवाना द्वीपों की खोज की। इन यात्रियों ने फीजी के द्वीपों की खोज तो की, परन्तु किसी ने यहां रहने या बस जाने का साहस नहीं किया। पहले यूरोपियन लोग, जिन्होंने नरभक्षी फीजीयन लोगों के साथ रहने की हिम्मत की, वे या तो मुसीबत के मारे हुए ऐसे लोग थे, जिनके जहाज़ समुद्र में टूट गए थे,

यंगोना का प्याला—यह फीजी का राष्ट्रीय पेय है, जो विशेष रूप से तैयार किया जाता है।

या वे भगोड़े अपराधी थे, जो आस्ट्रेलिया स्थित कैदों से भागकर फीजी के द्वीपों में आ छुपे थे। ये लोग फीजी के सामन्तों के पास आकर रहने लगे थे। उन्होंने

इन सामन्तों को लड़ाई करने के आधुनिक तरीके सिखलाए और साथ ही ऐयाशी की शिक्षा भी दी। इनमें अमरीकी यात्री चार्ल्स सैवेज का नाम उल्लेखनीय है।

इससे तीन वर्ष पहले सन् 1805 में कुछ यूरोपियन लोग चन्दन की लकड़ी की खोज में वनुआलेवू के पश्चिमी किनारे पर उतरे। उन्होंने लगभग दस वर्ष तक चंदन के पेड़ों को कटवा-कटवाकर जहाज़ से ढोना जारी रखा। यह लड़की सोने के दाम बिकती थी। उन्होंने जंगलों में नरभक्षी फीजियनों की परवाह न करते हुए चंदन की एक खूंटी भी नहीं छोड़ी।

इसी समय के आसपास ईसाई पादरी भी यहां आए। वे ताहिती थे, यूरोपियन नहीं। उनका संबंध लंदन मिशनरी सोसाइटी से था। उन्होंने अपना मुख्य कार्यालय लाऊ द्वीप में लकेम्वा में बनाया।

उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में कुछ गोरे व्यापारी स्थायी रूप से फीजी में व्यापार करने लगे। वे ओवालाऊ द्वीप के लेवूका गांव में रहने लगे जो आगे चलकर फीजी की राजधानी बना।

अठारहवीं शताब्दी के अंत तक स्थिति यह थी कि फीजियन लोग, चाहे वे पोलीनेशियन मूल के हों या मलनेशियन मूल के, उनकी स्थिति बहुत कुछ आदिवासियों जैसी ही थी। हां, वे कुछ समूहों में अवश्य बंट गए थे। ये समूह उनके मुखिया सरदारों या सामन्तों के अधीन थे। इस प्रकार सारा फीजी कई छोटे-बड़े सामन्तराज्यों में विभक्त था। उनमें से छः राज्य अपेक्षाकृत कुछ बड़े थे। इनके सामन्त आपस में लड़ा करते थे। इस समय वीतीलेवू में रेवा, विराटा और बाऊ के सामन्त राज्यों, वनुआलेवू में मकुआता, बुआ तथा दकोन्द्रीव के सामन्त राज्यों और लाऊ द्वीप में लकेम्वा के सामन्त राज्य को प्रमुखता प्राप्त थी।

ये राज्य भारतीय स्तर के रजवाड़े जैसे कहे जा सकते हैं। फीजियन लोग अभी तक लड़ाई-झगड़ों में ही अपना बहुत-सा समय बिताते थे। परन्तु लड़ाई में तोप-बंदूकों का प्रयोग न होने से मृतकों की संख्या कम और औसत दर और भी कम था। परन्तु जब यूरोपियन लोग यहां आए और उनके कारण तोप-बंदूकों का प्रचलन शुरू हुआ तो उसका प्रभाव लगभग वैसा ही हुआ जैसा कि 1945 में हिरोशिमा पर एटम बम का हुआ था। जिन सामन्तों को ये नये हथियार मिले और साथ में यूरोपियन लोगों की सहायता भी मिली, वे एक ही साथ दूसरों के ऊपर चढ़ बैठे। साथ ही, चंदन के व्यापार ने भी बहुत-से सामन्तों को धनवान

वना दिया था। वुआ का सामन्त, काफी महत्वपूर्ण वन गया था। उसने सवसे पहले अपने लिए लकड़ी का शानदार मकान वनवाया। उसके यूरोपियन मित्र उसकी सहायता के लिए सदा तैयार थे। इसी प्रकार वाऊ का सामन्त राज्य भी चंदन के व्यापार की वदौलत वहुत उन्नति कर गया। वैसे चंदन के गोरे व्यापारी इन सामन्तों को काफी मूर्ख वनाते थे और कुछ कील-कांटे, मामूली कुल्हाड़े, मनके मोती और ह्वेल मछली के दांत देकर लाखों डालर का माल ले जाते थे।

1805 के आसपास अचानक एक ऐसी घटना घटी जिसने फीजी के इतिहास को वहुत प्रभावित किया। 'एलिजा' नामक एक अमरीकी जहाज़ लोमाइवीती द्वीप से नौ मील की दूरी पर मोसिया (Mocia) रीफ में मूंगे की चट्टानों से टकराकर टूट गया। इसके यात्रियों में एक चार्ल्स सैवेज नामक यात्री था जो वहुत ही चतुर और धूर्त था। इस जहाज़ में चालीस हज़ार स्पेनिश डालर तथा वहुत-सा गोला-वारूद भी था। चार्ल्स सैवेज उसका मालिक वन वैठा। वह वाऊ के सामन्त के पास गया और वहीं रहने लगा। जल्द ही चारों ओर उसकी धाक जम गई। वह अचूक निशानेवाज था। उसके साथ और भी कई गोरे आवारा लोग आ मिले। अव वाऊ के सामन्त के क्या कहने। उसकी तोपों और वंदूकों के सामने रेवा, विराटा आदि के सामन्तों के छक्के छूट गए। यहीं से वाऊ के सामन्त राज्य का भाग्योदय शुरू हुआ और उसे फीजी सामन्तों में प्रमुखता मिलने लगी।

सन् 1817 में वाऊ के सामन्त घराने में एक ऐसा वालक उत्पन्न हुआ, जिसने फीजी के इतिहास को लगभग आधी शताब्दी तक प्रभावित किया। इसका नाम था सेरू। सेरू का पिता रातू तनोआ, जो वाऊ का सामन्त था, 1832 में लेवूका गया तो पीछे से उसके विरोधियों ने राज्य का तख्ता उलट दिया। रातू तनोआ की हालत खस्ता थी, परन्तु सेरू ने, जो उस समय वाऊ में था, तुरन्त ही एक योजना बनाई और अपना खोया हुआ राज्य पुनः वापस ले लिया।

सेरू दकम्वाऊ (Cakobau) वड़ा प्रतापी सामन्त था। फीजी में ईसाई धर्म का आगमन 1830 में हो चुका था। पांच वर्ष वाद दो ताहिती मैथोडिस्ट मिशनरी डेविड कार्गिल और विलियम क्रास लकेम्बा आए। उसके बाद पहले कैथोलिक मिशनरी 1844 में यहां पहुंचे। ये फ्रांस से आए थे। इन मिशनरियों ने स्थानीय भाषा का अध्ययन किया। शीघ्र ही फीजियन भाषा की वर्णमाला तैयार हो गई और उसका व्याकरण बनाने का काम भी थोड़ा-बहुत शुरू हो गया।

सामन्त सेरू दकम्बाऊ प्रारम्भ में ईसाई धर्म नहीं मानता था। परन्तु रेवा के साथ लगातार ग्यारह वर्ष तक युद्ध चलने के कारण उसकी स्थिति नाज़ुक हो गई थी। अमरीकी कौंसल का भी ज़ोर था। साथ ही तोंगा का राजा जोर्ज और मिशनरी लोग भी दबाव डाल रहे थे। इसलिए सेरू दकम्बाऊ ईसाई बन गया। उसे तोंगा के राजा का संरक्षण भी प्राप्त हुआ तथा अन्य कई सुविधाएं मिलीं। तोंगा की सहायता से दकम्बाऊ ने रेवा को पूरी तरह अपने काबू में कर लिया और वह पश्चिमी फीजी का प्रमुख सामन्त बन गया, हालांकि तोंगा के राजा की छाया उसपर हावी रही। इसी समय तोंगा के राजा के भतीजे सामन्त माफू (Ma'afu) ने भी पूर्वी फीजी में दकम्बाऊ के समान ही प्रभुसत्ता प्राप्त कर ली।

दकम्बाऊ को अपने सामन्त-काल में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उन्नसवीं शताब्दी के पांचवें दशक में यूरोपियन लोगों ने फीजी के भोले-भाले सामन्तों को छोटी-मोटी भेटों से खुश करके या दबाव डालकर यहां की ज़मीन हड़पना शुरू कर दिया था। न्यूज़ीलैंड स्थित अमरीकी कौंसल विलियम्स इस मामले में सबसे आगे रहा। उसने केवल अस्सी डालर देकर नुकुलाऊ (Nukulau) द्वीप, लौदाला (Laucala) पाइण्ट तथा और बहुत-सी ज़मीन खरीद ली। उसने नुकुलाऊ में अपना आलीशान बंगला बनाया। वहां 4 जुलाई, 1849 को बड़ा भारी जशन मनाया गया, जिसमें तोप फट जाने से एक नीग्रो नौकर की बांह उड़ गई। बड़ा हंगामा मचा। लूट-खसोट हुई और कौंसल ने दकम्बाऊ से एक हज़ार पौंड हरजाने की मांग की। परन्तु दकम्बाऊ उसे चुका नहीं सका। समय बीतता गया और हर्जाने की रकम बढ़कर नौ हज़ार पौंड हो गई। इसी बीच 1855में विलियम्स की लौदाला पाइण्ट स्थित कोठी जला दी गई। अब मामला बहुत बिगड़ गया। दकम्बाऊसे तैंतालीस हज़ार डालर हरजाने की मांग की गई और न देने की स्थिति में अमरीकी युद्धपोत 'जॉन एडम्स' समोआ (Samoa) से फीजी की सीमाओं पर आ पहुंचा। स्थिति नाज़ुक हो गई। दकम्बाऊ ने दो साल की मोहलत मांगी। 'जॉन एडम्स' वापस लौट गया और एक बार संकट टल गया।

अब बड़ी ताकतों का ध्यान फीजी की ओर आकर्षित होने लगा था। 1858 में ब्रिटेन ने भी विलियम थॉमस प्रिचर्ड को अपना पहला कौंसल बनाकर फीजी भेजा। वह वहां आठ सप्ताह रहा और उसने दकम्बाऊ की ओर से समर्पण की अर्ज़ी का मसौदा तैयार किया। समर्पण-पत्र के अनुसार दकम्बाऊ ने फीजी ब्रिटेन

को सौंपना स्वीकार किया, वशर्ते ब्रिटेन अमरीका को दकम्वाऊ का ऋण चुका दे। परन्तु 1860 में ब्रिटेन की सरकार की ओर से कर्नल डव्लू जे० स्माइथ को सारी स्थिति की जांच करने के लिए फीजी भेजा गया और उसकी सलाह पर समर्पण अस्वीकार कर दिया गया। ब्रिटिश कौंसल वापस बुला लिया गया।

इन घटनाओं के कारण आस्ट्रेलिया तथा अन्य देशों के लोगों में भी फीजी के प्रति दिलचस्पी वढ़ी। वहां से भी लोग फीजी में बसने के लिए आने लगे। दकम्वाऊ ने अमरीका को भी फीजी सौंपने का प्रस्ताव रखा पर अमरीका अपने गृहयुद्ध में व्यस्त था, इसलिए उसे जवाव देने को भी समय नहीं मिला। दकम्बाऊ ने हारकर जर्मनी से संरक्षण चाहा, पर बिस्मार्क ने भी उसे अस्वीकार कर दिया।

अमरीकी कर्जे का वोझ दकम्बाऊ के सिर पर भूत की तरह सवार था। आखिरकार अमरीकी कौंसल के दवाव से एक पोलीनेशियन कम्पनी वनाई गई, जिसने अमरीकी कर्ज अदा कर दिया और उस कंपनी को दम्वकाऊ की ओर से वीस हजार एकड़ जमीन और कुछ अन्य सुविधाएं दी गईं। इस घटना के छह वर्ष वाद सन् 1874 नें ब्रिटेन ने फीजी का समर्पण स्वीकार कर लिया।

1865 से 1874 के वीच फीजी में कई वार स्थायी सरकार बनाने का प्रयत्न किया गया। सामन्त राज्यों का एक संघ बनाने की कोशिश भी की गई, पर नाकामयाव रही। इस समय तक फीजी में काफी यूरोपियन और अन्य व्यापारी आकर वस गए थे और वे शान्ति और अमन-चैन के वातावरण में रहना चाहते थे, ताकि व्यापार की उन्नति हो। उनके प्रयत्नों से 5 जून, 1871 को एक क्रान्ति की गई। लेवूका में मैथोडिस्ट चर्च के सामने एक वड़ी सभा हुई, जिसमें दकम्वाऊ ने भी कुछ शव्द कहे। एक घोषणा पढ़ी गई, जिसमें अन्य वातों के साथ-साथ यह कहा गया कि दम्वकाऊ अब फीजी का महाराजा है। यूरोपियन और फीजियन मंत्रियों का एक मंत्रिमंडल वनाया गया। दकम्बाऊ का सिक्का चल पड़ा, परन्तु सिर्फ ढाई साल तक।

हारकर मार्च 1874 में फिर से ग्रेट ब्रिटेन को फीजी सौंपने का प्रस्ताव रखा गया। बिना किसी शर्त के एक समर्पण-पत्र तैयार किया गया और विश्वास की भावना तथा सदिच्छा के साथ उस पर 10 अक्तूबर, 1874 को लेवूका में ब्रिटिश सम्राट की ओर से रॉबिन्सन ने और फ्रीजी की ओर से दकम्बाऊ, माफू और ग्यारह अन्य सामन्तों ने हस्ताक्षर किए। इस प्रकार फीजी ब्रिटिश साम्राज्य

का एक उपनिवेश बन गया। सर आर्थर गोर्डन को पहला गवर्नर नियुक्त किया गया। ब्रिटिश संरक्षण में शान्ति और व्यवस्था का युग प्रारम्भ हुआ। अब उद्योग-धन्धे स्थापित करने की बारी आई। कॉलोनियल शुगर रिफाइनिंग कम्पनी नामक एक आस्ट्रेलियन कम्पनी की स्थापना हुई। बड़े पैमाने पर गन्ने की खेती होने लगी। कम्पनी की मिलों में चीनी बनाई जाने लगी और विदेशों में भेजी जाने लगी। इस चीनी उद्योग की आवश्यकता को पूरा करने के लिए ही भारत से गिरमिट प्रथा के अंतर्गत श्रमिक बुलाए गए थे।

उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में यूरोपियन लोगों ने फीजी के शासन को न्यूजीलैंड के साथ मिलाने का प्रयास किया, जो सफल नहीं हुआ। परन्तु 1904 में उन्हें विधान परिषद् में पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिल गया। फीजियन लोगों को उनकी पारंपरिक व्यवस्था के आधार पर 1963 तक प्रतिनिधित्व मिलता रहा। परिषद् में एक भारतीय सदस्य को नामजद किया जाता रहा। भारतवंशी लोग सरकार में अधिक हिस्से की मांग करते रहे, जो उन्हें प्रथम बार 1929 में प्राप्त हुआ। भारतवंशी 'कामन रोल' (सम्मिलित मतदाता सूची) की मांग करते रहे, जो आज तक जारी है।

इस शताब्दी के छठे और सातवें दशक में फीजी धीरे-धीरे स्वशासन की ओर बढ़ता रहा। जातीय आधार पर सरकार बनाने की प्रवृत्ति पर शनैःशनैः काबू पा लिया गया और रातू सर कामिसेसे मारा ने, जो फीजी के प्रथम प्रधान मंत्री हुए, एक बहुजातीय राजनीतिक दल, जिसका नाम 'एलाइन्स पार्टी' है, बनाया। इसमें भारतवंशी लोग भी पर्याप्त संख्या में हैं। विरोधी दल का नाम 'फेडरेशन पार्टी' है, जिसने स्वर्गीय ए० डी० पटेल के प्रबुद्ध नेतृत्व में फीजी की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए 'एलाइन्स पार्टी' के साथ मिलकर पूरा प्रयत्न किया। आज इस दल के अध्यक्ष श्री एस० एम० कोया हैं, जो विरोधी पक्ष के नेता भी हैं। वे मूलतः केरल-वासी मुसलमान हैं।

समर्पण-पत्र पर हस्ताक्षर होने की तारीख से ठीक छियानवे वर्ष बाद 10 अक्तूबर, 1970 के दिन ब्रिटेन की महारानी की ओर से फीजी की जनता की अमानत को राजकुमार चार्ल्स ने पुनः फीजी की जनता के हाथों में सौंप दिया। विश्व के इतिहास में ऐसी घटना विरली होती है, जब किसी देश के नेताओं ने अपना देश खुशी-खुशी किसी बाहरी शक्ति को सौंपा हो और फिर उस शक्ति ने

भाला-नृत्य

उस अमानत को पुनः उस देश के नेताओं के हाथों में ज्यों-का-त्यों, बल्कि बहुत ही उन्नत और खुशहाल स्थिति में, सौंप दिया हो, अस्तु महारानी की ओर से राजकुमार चार्ल्स ने राष्ट्रनायक सर कामिसेसे मारा को स्वतन्त्रता-पत्र सौंप दिया। जो मूल समर्पणपत्र था, उस पर तूईवीती और बाऊ के वूनीवालू रातू सर दकम्बाऊ द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे और जब स्वाधीनता आई तो नई सरकार में उसी रातू सेरू के दो प्रपौत्र रातू जार्ज दकम्बाऊ (जो फीजी के प्रमुख सामन्त तथा बाऊ के वर्तमान वूनीवालू हैं) और सर एडवर्ड दकम्बाऊ को प्रमुख मंत्रिपद दिया गया।

प्रथम गवर्नर जनरल का कार्यकाल समाप्त कर बाऊ के वूनीवालू रातू सर दकम्बाऊ को फीजी का गवर्नर जनरल बनाया गया जो दस साल तक इस पद पर आसीन रहे। सर एडवर्ड दकम्बाऊ का जो उप-प्रधान मंत्री थे, स्वर्गवास के उपरान्त रातू सर पैनेय्या गनीलाऊ ने उनका स्थान ग्रहण किया। सर पैनेय्या गनीलाऊ ही आजकल फीजी के गवर्नर जनरल हैं।

आज का फीजी एक प्रभुतासम्पन्न लोकतन्त्रात्मक राज्य है। फीजी का संविधान यहां का सर्वोच्च कानून है और यहां की बहुजातीय जनता के प्रतिनिधियों द्वारा सोच-विचार कर तैयार किया गया है। इस संविधान के अन्तर्गत सबको प्रत्यक्षतः समानता और पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है। भारत के संविधान की तरह फीजी के संविधान में भी मुलभूत अधिकारों की व्यवस्था है। यहां का नागरिक अपनी इच्छा के अनुसार चाहे जिस धर्म को अपना सकता है। उसे अभिव्यक्ति और चिन्तन की स्वतन्त्रता है। उसे सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त है। बेगार और दासता का मूलोच्छेदन कर दिया गया है। धर्म, जाति, संप्रदाय, वर्ण आदि किसी प्रकार का भेदभाव नहीं बरता जाता। परन्तु फीजी अब भी इंग्लैंड की महारानी को अपनी महारानी मानता है और उसकी प्रिवी कौंसिल को अपनी सर्वोच्च न्यायिक अपील संस्था।

4

# राजधानी और नगर

फीजी द्वीप समूह में आधुनिक सभ्यता के साथ नागरिक जीवन की शुरुआत हुए अभी एक सौ वर्ष भी नहीं हुए हैं। जब फीजी ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत आया, उस समय यहां की जनता ग्रामीण जीवन बिताती थी। लोग नदी-नालों के किनारे छोटे-छोटे गांवों में, जिन्हें फीजियन भाषा में 'कोरो' कहते हैं, रहते थे। आज भी यहां की तिहाई जनता गांवों में ही रहती है। यद्यपि फीजियन लोगों के गांव समुदाय के आधार पर बने हैं, परन्तु भारतवंशियों के गांव तो नाममात्र के गांव हैं। वे सब परिवार के लोग एक या दो घर बनाकर अपने खेत और जमीन के पास या काम करने के स्थान पर एक-एक इकाई के तौर पर रहते हैं। यही दो या तीन घरों का समूह उनका गांव होता है। ब्रिटिश आधिपत्य के बाद धीरे-धीरे नगरों का विकास होना शुरू हुआ। पर आज भी पूरे देश में, जिसकी आबादी लगभग सवा पांच लाख है, दस से अधिक प्रसिद्ध नगर या कस्बे नहीं हैं।

फीजी के सौ आबाद द्वीपों में भी दो द्वीप, वीतीलेवू और वनुआलेवू ही सबसे बड़े हैं, जहां नगरों और नागरिक जीवन का विकास हो रहा है। वीतीलेवू के मुख्य नगर हैं—सूवा, लौतोका, वातुकौला, बा, नांदी नौसूरी, सिगाटोका, नाबुआ और ताबुआ। ये नगर वीतीलेवू में चारों ओर समुद्र के किनारे-किनारे बसे हुए हैं। इन नगरों को एक गोलाकार सड़क मार्ग से जोड़ा गया है। इस सड़क के पूर्व से उत्तर की ओर फैले हुए आधे भाग को किंग्स रोड और शेष आधे भाग को क्वीन्स रोड कहते हैं। बनुआलेवू द्वीप के मुख्य नगर लंबासा और सावूसावू हैं। इन दो बड़े द्वीपों के अलावा, तीसरा द्वीप है तेवयूनी, जो 'फिजी का उद्यान' कहा जाता है। वहां आबादी तेजी से बढ़ रही है। इस द्वीप में सैलानियों की दिलचस्पी की बहुत-सी बातें होने के कारण उनके लिए होटल आदि की सुख-सुविधाएं भी बढ़ती जा रही हैं।

**सूवा (Suva) :** सूवा फीजी द्वीपसमूह का सबसे बड़ा नगर है। यह फीजी की राजधानी है! इससे पहले सन् 1882 तक फीजी की राजधानी लेवूका में थी, जो ओवालाऊ द्वीप पर स्थिति है। भारतीय श्रमिक सर्वप्रथम लेवूका ही लाए गए थे। जब वीतीलेवू में खेती और चीनी उद्योग की गतिविधियां बढ़ीं तो राजधानी को वीतीलेवू लाए जाने का निर्णय किया गया। उसके लिए उपयुक्त स्थान की खोज होने लगी और अंत में उस स्थान को, जहां आज का सूवा आबाद है, राजधानी के लिए चुना गया। यहां का बंदरगाह जहाजों की सुरक्षा की दृष्टि से बहुत उपयुक्त था। दूसरे, यह स्थान फीजी की सबसे बड़ी नदी रेवा के मुहाने पर स्थिति था तथा इसके विकास के लिए बहुत गुंजाइश थी। उस समय का सूवा एक फीजियन कोरो था, जो आज जहां बोटैनिकल गार्डन स्थित है, वहां पर बसा हुआ था। जब राजधानी बनाई गई तो इस गांव को हटाकर बालूवे से परे बसा दिया गया। 1877 से 1882 तक नये नगर का निर्माण किया गया। लगभग सौ साल के अरसे में आज का सूवा विकसित हो गया। अधिकांश सरकारी कार्यालय, सूवा सिविक सेंटर,टाउन हाल, फीजी ब्रांडकास्टिंग हाउस, विक्टोरिया परेड नामक प्रसिद्ध सड़क पर स्थित हैं। इसी सड़क पर एलबर्ट पार्क है, जहां हर रोज खेलकूद का मनोरंजक कार्यक्रम होता रहता है। इसके पास ही बोटैनिकल गार्डन है, जिसमें फीजी का म्यूजियम है। पास में राजभवन की शानदार इमारत है, जहां फीजी के सर्वोच्च नागरिक, गवर्नर जनरल निवास करते हैं।

यहां व्यापारिक नगर की सभी सुविधाएं उपलब्ध हैं। बड़े-बड़े आस्ट्रेलियन और ब्रिटिश तथा अन्य विदेशी फर्मों के कार्यालय भी यहां पर हैं। पहले से ही आधुनिक सुख-सुविधाओं से सम्पन्न होटलों की संख्या काफी है और उसमें दिनों-दिन बढ़ोतरी होती जा रही है। समुद्री तट का विकास करके उसे सुन्दर और आकर्षक बनाया जा रहा है। कमिंग स्ट्रीट, रेनविक रोड और मार्क्स स्ट्रीट यहां के मुख्य व्यापारिक केन्द्र हैं। यहां बड़े-बड़े डिपार्टमेंटल स्टोर हैं, जहां एक ही छत के नीचे मनुष्य की जरूरतों को पूरा करने का सभी सामान आसानी से मिल जाता हैं। कमिंग स्ट्रीट में शुल्कमुक्त वस्तुओं का प्रसिद्ध बाजार है। कमिंग स्ट्रीट पर भारतवंशी गुजराती व्यापारियों का एकाधिपत्य-सा है।

सूवा का एक औद्योगिक केन्द्र के रूप में भी विकास हो रहा है। औद्योगिक विकास के लिए यहां एक अच्छा समुद्री बंदरगाह है, जहां से किंग्स व्हार्फ और
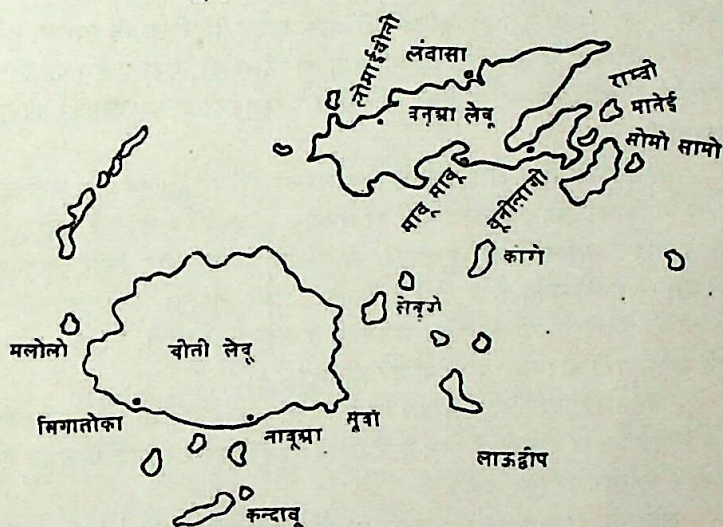
क्वीन्स ह्वार्फ पर रोजाना सैकड़ों टन माल जहाजों में लादा और उतारा जाता है। वालूवे की ओर औद्योगिक क्षेत्र का विकास हो रहा है। वहां कई कारखाने और मिलें स्थापित हो गई हैं। अभी हाल ही में फीजी और भारत के संयुक्त उद्यम के रूप में एक बड़ी आटे की मिल स्थापित की गई है। सूवा की आबादी इस समय साठ हजार से ऊपर है। सूवा की सड़कों पर रंग-बिरंगे लोग भांति-भांति के कपड़ों और पोशाकों में दिखाई देंगे। यहां मूल फीजियन लोगों के अलावा भारतवंशी, चीनी और यूरोपियन लोग भी बहुत हैं। व्यापार इन्हीं विदेशी मूल के लोगों के हाथ में है। यहां के विक्टोरिया आर्केड जैसी इन्द्रधनुषी गलियों की शोभा में विदेशी सैलानियों की मौजूदगी से चार चांद लग जाते हैं। सूवा की शाम यों तो सदा ही मजेदार होती है, परन्तु शुक्र और शनि को रोज इसकी रंगीनी और भी बढ़ जाती है। यहां के सार्वजनिक स्थान, होटल और मधुशालाएं (बार रूम) सूर्यास्त होने के साथ-साथ मानो नई जिन्दगी से चंचल हो उठती हैं।

सूवा शिक्षा का केन्द्र भी है। यहां साक्षरता का प्रतिशत बहुत ऊंचा है। अनेक

धार्मिक और सामाजिक संस्थाएं अपने-अपने स्कूल चलाती हैं, सरकारी स्कूल तो हैं ही। सन् 1967 में यहां यूनिवर्सिटी आफ साउथ पैसिफिक की स्थापना हुई। यहां सभी प्रकार के आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा की व्यवस्था है। यह विश्व-विद्यालय सारे प्रशान्त के देशों की उच्च शिक्षा की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

यहां आध्यात्मिक और धार्मिक संस्थाओं की भरमार है। एक ओर जहां ऊंचे-ऊंचे गिरजाघर ईसाई धर्मावलंबियों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, वहां दूसरी ओर मंदिरों, मस्जिदों और गुरुद्वारों की घंटियां, अजान और जैकारे वातावरण में धार्मिकता की सुगंध फैला रहे हैं। थियोलोजिकल कालेज के अलावा पब्लिक स्कूल भी हैं। पादरियों की ट्रेनिंग व्यवस्था भी उच्चकोटि की है, हरे कृष्ण मन्दिर भी बन गया है और साईं बाबा मन्दिर भी यहां है।

सूवा नांदी हवाई अड्डे के माध्यम से भारत और अन्य देशों से जुड़ा है। सूवा का हवाई अड्डा नौसूरी के पास है जो सूवा शहर से लगभग पंद्रह मील दूर रेवा नदी के किनारे पर स्थिति है।

**लौतोका (Lautoka)** : जनसंख्या के हिसाब से लौतोका फीजी का दूसरे नम्बर का शहर है। इसकी आबादी बारह हजार है, जिसमें अधिकांश भारतीय मूल के हैं। लौतोका चीनी उद्योग के लिए प्रसिद्ध है। यहां पर कॉलोनियल शुगर रिफाइनिंग कंपनी की सबसे बड़ी मिल है। अब इस कंपनी का राष्ट्रीयकरण हो गया है। इस मिल के कारण यहां का बंदरगाह बहुत महत्त्वपूर्ण हो गया है। यहां से प्रतिवर्ष हजारों टन चीनी का निर्यात किया जाता है।

लौतोका भी सूवा की तरह एक सुन्दर नगर है। यहां आधुनिक जीवन की सभी सुविधाएं उपलब्ध हैं। यहां के बाजार में फीजी के बड़े-बड़े फर्मों की दुकानें और कार्यालय हैं। लगभग सभी छोटी दुकानें भारतवासियों की हैं। चर्चिल पार्क में खेल के मैदान हैं, जहां बड़े-बड़े टूर्नामेंट होते हैं। फीजी की एकमात्र रेलवे लाइन जो केवल गन्ना ढोने के काम आती है, इस नगर के बीच से गुजरती है। कुछ मील दूर सावेनी नामक स्थान पर बहुत सुन्दर और मनोरम समुद्री किनारा है, जहां नहाने और तैरने के लिए लोग दूर-दूर से आकर्षित होकर आते हैं। इससे बहुत दूर नहीं, पंद्रह-बीस मील पर कास्टबे, टाई टापू आदि बहुत ही सुन्दर सैलानियों के स्वर्ग हैं, जहां तेज चलने वाली नावों पर लोगों को ले जाया जाता है।

रास्ते-भर नाच-गाना चलता है और वहां पहुंचकर शान्ति के वातावरण में खाना-पीना, नहाना, तैरना आदि सब ही कुछ तो होता है। लौतोका सूवा से उत्तरी किंग्स रोड के जरिये 169 मील और दक्षिणी क्वीन्स रोड के द्वारा 158 मील दूर है। सूवा की अपेक्षा यहां वर्षा कम होती है, और धूप का आनन्द लेने के अवसर अधिक मिलते हैं।

वातुकौला (Vatukolo) : इसकी आबादी पांच हजार से ऊपर है। इसकी विशेषता यह है कि यह नगर एम्परर एण्ड लोलोमा माइन्स नामक कंपनी द्वारा निजी तौर पर इस शताब्दी के चौथे दशक में बसाया गया था। इसलिए इसे नगर नहीं कहा जा सकता; यहां कानूनी तौर पर स्थानीय परिषद् भी नहीं है। इसकी स्थापना केवल इसीलिए हुई है कि यहां पर सोने की खानें हैं और जिस दिन खान-खुदाई का काम बंद हो जाएगा, हो सकता है उस दिन यह नगर भी उजड़ जाए। परन्तु इस समय तो यह एक सुन्दर बस्ती है। यह मुख्य सड़क किंग्स रोड पर स्थित तावुआ (Tavua) नगर से लगभग सात मील की दूरी पर स्थिति है और एक छोटी सड़क से जुड़ा हुआ है। फीजी सरकार यहां मिलें स्थापित करने और अनेक उद्योग-धन्धे बिठाने के लिए सुविधाएं दे रही है।

नान्दी (Nadi) : द्वितीय महायुद्ध से पहले इस नगर का महत्त्व केवल इतना ही था कि वह गन्ना उगाने वाले एक जिले का मुख्यालय था। परन्तु युद्ध के दौरान इस नगर से थोड़ी दूर पर स्थिति हवाई पट्टी को विकसित करके सैनिक महत्व का एक बड़ा हवाई अड्डा बना दिया गया। युद्ध की समाप्ति के बाद इसे एक अंतर्राष्ट्रीय महत्व के हवाई अड्डे में परिर्वातित कर दिया गया। आज का नान्दी एयरपोर्ट न केवल फीजी द्वीपसमूह का प्रवेश-द्वार है, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का एक महत्त्वपूर्ण हवाई अड्डा भी है, जहां से दुनिया के हर कोने में हवाई जहाज जाते और आते हैं। इसके चारों ओर बहुत ही सुन्दर होटल हैं।

हवाई अड्डे से चार मील की दूरी पर नान्दी नगर स्थिति है। यहां भारत-वंशियों की आबादी बहुत अधिक है। रामकृष्ण मिशन का सुन्दर आश्रम है, साथ ही फीजी की सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा का मुख्य कार्यालय भी। मंदिरों और स्कूलों की कोई कमी नहीं। रामायण और भजन मंडलियां तथा संगीत संस्थाएं अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करती रहती हैं। नांदी लौतोका से सोलह मील दूर है।

**बा** (Ba) : लौतोका से किंग्स रोड पर वीस मील दूर वा नगर भी चीनी-उद्योग के लिए प्रसिद्ध है। यह वा जिले का मुख्यालय है। इस जिले में चीनी की दो मिलें हैं। आसपास के इलाके में गन्ने की भरपूर खेती की जाती है, जिसमें भारतवंशी किसान अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। पिछले कुछ वर्षों में नगर का कायाकल्प कर दिया गया है। वढ़िया मकान वन गए हैं। सड़कें भी पक्की और साफ-सुथरी हैं। इस समय इसकी आवादी चार हजार से ऊपर है। इस शहर में तथा इसके आसपास पंजावियों की आवादी है। सिखों के सम्पन्न परिवार भी यहीं हैं।

**नौसूरी** (Nausori) : हवाई मार्ग से सूवा आने वाला प्रत्येक व्यक्ति नौसूरी से होकर गुजरता है। यह रेवा नदी पर स्थिति एक छोटा-सा कस्वा है। पहले यहां चीनी की एक वड़ी मिल थी, जो अव वंद कर दी गई है। फिर भी नगर का महत्त्व कम नहीं हुआ है। यहां पर चावल की एक वड़ी मिल है। यह नगर पशुपालन उद्योग का मुख्य केन्द्र है। अभी हाल ही में भारतीय चाय वोर्ड के प्रोत्साहन से तूई टी फैक्टरी की स्थापना की गई है, जहां भारतीय चाय को बेचने के लिए डिब्बों में वंद किया जाता है।

**सिंगाटोका** (Sigatoka) : सूवा से दक्षिण-पश्चिम में क्वीन्स रोड पर लग भग अस्सी मील की दूरी पर सिंगाटोका नगर स्थित है। यह वड़ा नगर नहीं है, परंतु यहां नागरिक सुविधाएं सभी उपलब्ध हैं। सैलानियों के लिए फीजी के सवसे सुंदर और वड़े होटल इसी शहर के आसपास हैं। यह नगर सिंगाटोका नदी के किनारे उसके मुहाने से एक मील दूर स्थित है। सिंगाटोका की घाटी सैलानियों के लिए वहुत वड़ा आकर्षण है। सिंगाटोका नदी के ऊपर घाटी में नेपालियों की वस्तियां हैं। लोग इसलिए इसको नेपालगंज भी कह देते हैं। सुन्दर पुत्र वधुओं की तलाश वाले लोग नेपालगंज की युवतियों पर नज़र रखते हैं।

वनुआलेवू द्वीप का मादुआता प्रान्त पुराने ज़माने से ही काफी महत्त्वपूर्ण रहा है। आज भी जनसंख्या की दृष्टि से यह प्रान्त सवसे घना बसा हुआ है। इसका मुख्य कारण है कि इस प्रान्त में गन्ने की खेती वहुतायत से होती है।

**लंबासा** (Labasa) : लंबसा मादुआता प्रान्त का मुख्य नगर है। यह लंवासा नदी के किनारे वसा हुआ है। इस नगर में चीनी की एक बड़ी भारी मिल है। लंवासा का हवाई अड्डा भी नगर से दूर नहीं है। यहां भारतवंशियों की दुकानें भी
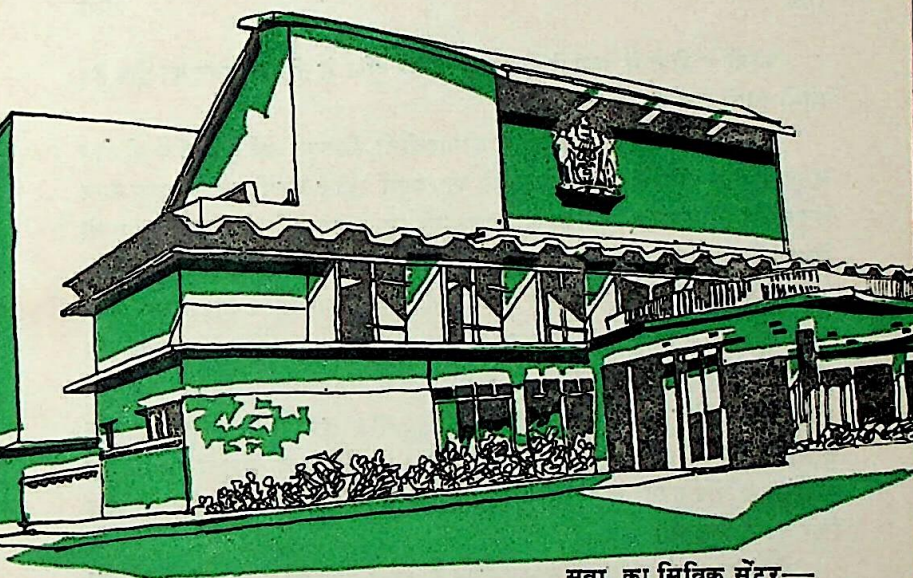
सूवा का सिविक सेंटर—
इसमें एक बड़ा प्रेक्षागृह भी है

बहुत हैं। आबादी लगभग तीन हज़ार है। लम्बासा से बुआ की सड़क पर एक बड़ी विकास योजना बनी है—'सैगॉमा', जहां नई जगहें जोतकर गन्ने उगाने वाले किसानों को दी गई हैं—जहां का सारा गन्ना लुम्बासा की मिल में पेरने के लिए भेजा जाता है—सैगॉमा नया विकसित क्षेत्र है, जिसे सरकार प्रत्येक प्रमुख विदेशी अतिथि को दिखाती है।

**सावू-सावू (Savu-Savu)** : सावू-सावू, जिसे वालेदी भी कहते हैं, वनुआलेवू का दूसरे नम्बर का नगर है। यह नगर सावू-सावू खाड़ी के पूर्वी सिरे पर बसा हुआ है। यह अच्छा बंदरगाह भी है। यहां से पूर्व की ओर साढ़े नौ मील की दूरी पर मुआनीयुला एस्टेट है, जहां सैलानियों के रुकने का प्रवन्ध है। सावू-सावू के चारों ओर के इलाके में नारियल की खेती बहुतायत से होती है। सावू-सावू नगर के पास एक जहाज़ी पट्टी भी है। नौससूरी से फीजी एयरवेज के छोटे-छोटे हवाई जहाज़ और एयर पैसिफिक के जहाज़ भी यहां आते-जाते हैं।

फीजी के द्वीपों में तेवयूनी द्वीप आकार की दृष्टि से तीसरे नम्बर का द्वीप है। सोमो सोमो यहां का मुख्य नगर है।

**लेवूका (Levuka)** : फीजी के सोमाइवीती, जिसका अर्थ है केन्द्रीय फीजी। समूह के सात द्वीपों में ओवालाऊ सबसे महत्त्वपूर्ण रहा है, क्योंकि इसका मुख्य नगर लेवूका काफी समय तक फीजी की राजधानी रहा। जब यूरोपवासी यहां आए तो लेवूका के सामन्त से उनकी मित्रता हुई और इसलिए वे सर्वप्रथम यहीं बसे। 1882 में यहां से राजधानी हटने के बाद भी लेवूका का महत्त्व काफी समय तक कम नहीं हुआ। परन्तु इसके विकास के लिए अधिक जगह न होने से वह रुक गया और 1886 में भयंकर तूफान आने के बाद इसका महत्त्व घटता ही गया। लेवूका 1957 तक नारियल के व्यापार का मुख्य केन्द्र था। सूवा में तेल मिल खुल जाने से भी लेवूका की कद्र कम हो गई। परन्तु 1964 में ट्यूना मछली उद्योग की स्थापना से और बुरेता में हवाई पट्टी बन जाने से लेवूका का व्यापारिक महत्त्व फिर बढ़ने लगा है।

आज का लेवूका एक पुराना-सा नगर है, जहां न होटल हैं, न बड़ी-बड़ी फर्मों के डिपार्टमेंटल स्टोर। इस समय लेवूका की जनसंख्या दो हज़ार के आस-पास है। 10 अक्तूबर, 1974 को जहां सबसे पहली बार यूनियन जैक फहराया गया था, वहां आज भी उसकी यादगार में एक बड़ा चिकना पत्थर लगा हुआ है।

फीजी के और द्वीप या द्वीपों के समूह बहुत छोटे हैं और उनमें नगर कहलाने लायक बस्तियां नहीं के बराबर हैं। लकैम्बो में सैलानियों की दिलचस्पी बढ़ाने के लिए जहां-तहां प्रकृति की गोद में अनेक स्थल विकसित किए जा रहे हैं।

5

# सैलानियों का स्वर्ग

दक्षिण प्रशान्त की सुखमय गोद में अवोध बालकों की तरह अठखेलियां करते हुए ये असंख्य छोटे-बड़े द्वीप सदियों से मनमौजी नाविकों, सैलानियों और घुमक्कड़ लोगों के मनों को आकर्षित करते रहे हैं। कहा जाए कि फीजी द्वीपसमूह की खोज भी मनमौजी सैलानियों ने ही की तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ से ही देश-विदेश के अनेक लोग सैर-सपाटे के लिए फीजी आते रहे। परन्तु द्वितीय महायुद्ध के बाद यहां पर्यटकों के आवागमन में बहुत वृद्धि हुई और पिछले पांच वर्षों से तो पर्यटन यहां का एक मुख्य उद्योग हो गया है और इससे होने वाली आय में भी अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। पर्यटन उद्योग की इस उन्नति के वैसे तो वहुत-से कारण हैं, मगर दो-तीन कारण मुख्य रहे हैं: फीजी के द्वीपों का स्वास्थ्यवर्द्धक सदाबहार मौसम, रुपहले रेतीले समुद्र-तट और यहां के लोगों का स्वागत-भरा सरल-सहज स्वभाव।

फीजी सरकार ने पर्यटन के विकास के लिए दो महत्त्वपूर्ण कार्य-क्रम प्रारंभ किए। 1958 में होटल सहायता अध्यादेश जारी किया गया, जिसके द्वारा नये होटलों की स्थापना को बढ़ावा दिया गया और पुराने होटलों के सुधार और विकास को प्रोत्साहित किया गया। फीजी विकास बैंक सभी पर्यटन उद्योगों और व्यवसायों के विकास के लिए सुविधाएं प्रदान करता है।

एक अन्य कार्य-क्रम यहां चालू किया गया, जिसके अंतर्गत फीजी को आंशिक रूप से शुल्कमुक्त कर दिया गया। बहुत सी सुन्दर-सुन्दर उपयोगी चीजें जैसे रेडियो रेकार्डप्लेयर, कैमरे, घड़ियां आदि शुल्कमुक्त कर दी गईं और बहुत-सी अन्य चीज़ों पर आयात-शुल्क घटा दिया गया। इसका दोहरा प्रभाव हुआ। व्यापार की उन्नति हुई और साथ ही पर्यटन उद्योग में भी वृद्धि हुई। 'ड्यूटी फ्री' चीज़ें खरीदने के लिए आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड के लोग यहां बड़ी तादाद में आने लगे।

अगर आप सैलानी हैं तो लीजिए,
आप भी यंगोना पीजिए !

फीजी की स्थिति भी पर्यटन के विकास के बहुत अनुकूल रही है। यह देश अंतर्राष्ट्रीय हवाई मार्गों पर स्थित है। सभी बड़े-बड़े देशों को जाने वाले हवाई जहाज़ यहां के नान्दी हवाई अड्डे से गुज़रते हैं। इसी प्रकार आस्ट्रेलिया और उत्तरी अमेरिका के बीच आने-जाने वाले पानी के जहाज़ भी फीजी होकर जाते हैं।

सैलानियों की संख्या में वृद्धि होने का एक कारण यह भी है कि फीजी सरकार की ओर से उनके मार्गदर्शन की उचित व्यवस्था की गई है। इस संबंध में 'फीजी विज़िटर्स ब्यूरो' नामक संस्था का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। ब्यूरो का मुख्य कार्यालय सूवा में विक्टोरिया पैरेड पर है। एक कार्यालय नान्दी हवाई अड्डे पर भी है। इन कार्यालयों से फीजी आने वाले सभी सैलानी उपयोगी सूचना और मार्ग-दर्शन प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु विशेष बात यह है कि जब आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड में लोग सर्दी से कांपते हों तो नज़दीक ही फीजी द्वीपों के समुद्र-तट पर सूरज की तपती किरणों में बदन की त्वचा को 'कॉपर' रंग लेने का लोभ कौन संवरण कर सकता है!

सैलानियों को सुविधा प्रदान करने के लिए यातायात और परिवहन की व्यवस्था में भी बहुत सुधार किया गया है। वीतीलेवू, वनुआलेवू तथा अन्य महत्त्वपूर्ण द्वीपों में हवाई सेनाएं प्राप्त हैं, जो प्रमुख नगरों और पर्यटन-केन्द्रों को आपस में जोड़ती हैं। सैलानियों को डीलक्स कारें एयरकंडीशंड बसें और टैक्सियां आसानी से मिल जाती हैं। कुछ प्रमुख नगरों और द्वीपों के लिए समुद्री विहार करती सुसज्जित नौकाएं लोगों को लहरों की गति के साथ उन्मत्त कर देती हैं। इन सुन्दर जलयानों और समुद्री नौकाओं में पैर रखते ही आप दूसरी दुनिया में पहुंच जाते हैं।

फीजी के द्वीपों में होटलों, मोटलों, आरामघरों, अतिथिगृहों और अन्य अनेक प्रकार के निवास के साधनों की भरमार है। नये ढंग के नगरीय होटलों में, जहां सभी प्रकार की आधुनिक सुविधाएं उपलब्ध हैं, वहां बूरे टाइप ग्रामीण आवास गृहों में प्राकृतिक जीवन का आनन्द भी प्राप्त होता है। हर छोटा टापू एक सैलानी-केन्द्र-सा बन गया है।

परन्तु पर्यटन-विकास के ये सारे सरकारी और व्यावसायिक प्रयत्न धरे के धरे रह जाते, यदि फीजी के द्वीपों में वह रमणीयता, मनोरमता, शांति और सुखमय वातावरण नहीं होता जो ईश्वर ने दिल खोलकर उन्हें प्रदान किया है। कितने सुन्दर हैं यहां के पहाड़, जो दूर से ही नहीं, बल्कि पास जाने और ऊपर

चढ़ने पर भी सुहावने हैं, उनपर वल खाती हुई नदियां और नाले, गरम पानी के झरने और झीलें, तलहटी में सीढ़ीदार खेत और फिर मैदानी फार्म जिसमें गन्ना, धान, आलू और अन्य फसलें वहुतायत से पैदा होती हैं। मध्य भाग के जंगल जिनमें भांति-भांति के फलों और फूलों वाले पेड़ हैं, जीवट वाले सैलानियों को बुलावा देते हैं।

अधिकांश सैलानी शहरी जीवन के तनाव और आधुनिक सभ्यता की चकाचौंध से कुछ समय के लिए नजात पाने के हेतु यहां आते हैं। इसलिए वे सूवा जैसे शहर में अपेक्षाकृत थोड़े समय के लिए ही रुकना चाहते हैं। उनका प्रयत्न यही होता है कि जल्दी-से-जल्दी छोटे-से सुन्दर द्वीप के शांतिमय वातावरण में चले जाएं या समुद्र की सैर की जाए अथवा किराए की गाड़ी से सड़क मार्ग में वीती-लेवू या वनुआलेवू द्वीपों के भीतरी भागों की सैर की जाए। घोड़ों पर चढ़कर खेतों की हरी मेड़ पर या समुद्र-तट की चांदी जैसी बालू पर दौड़ना सभी को अच्छा लगता है। इसलिए फीजी म्यूजियम, बोटेनिकल गार्डन, एक्वेरियम, राजभवन, तामावुआ की ऊंचाइयों, कमिंग स्ट्रीट की सजी हुई दुकानों और वड़े-वड़े डिपार्टमेंटल स्टोरों का चक्कर लगाकर सैलानी सूवा हार्बर पर पहुंच जाते हैं, जहां भांति-भांति की सुन्दर और सुखदायी नौकाएं उनका इन्तजार करती हैं। इन नौकाओं के अजीब नाम होते हैं, जैसे ऊललूलू-ऊललूलू, नल्लूलू, ऊलाला आदि। इन नौकाओं में खाने-पीने, नाचने-गाने और अन्य मनोरंजनों की व्यवस्था भी होती है। शीशेदार पेंदे में से तरह-तरह की छोटी-बड़ी मछलियां, केकड़े, घोंघे, कछुए पानी में तैरते हुए दिखाई देते हैं। जलीय वनस्पति और प्रबाल पुंज आंखों को आकर्षित करते हैं। नौका शीतल, मन्द और सुगन्धित समीर का आनन्द देती हुई, संगीत की ध्वनि के साथ समुद्र के नीले वक्षस्थल पर मंथर गति से बढ़ती जाती है। एक-दूसरे से अनजाने सैलानी हंसी-खुशी के साथ गप्पें लड़ाते, वोलते-वतलाते, गाना गाते स्वर्गीय आनन्द का अनुभव करते हैं। कोई सुन्दर-सा द्वीप दिखाई देता है, नौका वहां पहुंच जाती है और सैलानी तुरन्त उतर पड़ते हैं। कपड़े बदलकर नहाने की पोशाक पहने हुए समुद्र में घुस जाते हैं। नहाने और तैरने का मज़ा लेते हैं। फिर बाहर निकलकर खुली धूप में बालू पर लेट जाते हैं। यह क्रम काफी देर तक चलता है। कुछ सैलानी मछली पकड़ने का मज़ा लेते हैं। नारियल का स्वादिष्ट दूध पीकर अपनी प्यास बुझाते हैं।

फीजियन लोग बड़े प्रेमी जीव होते हैं। वे अपनी भोली मुस्कराहट से सैलानियों का स्वागत करते हैं। उनके गांव बड़े साफ-सुथरे होते हैं। सैलानी उनके साथ रहने और खाने-पीने का मज़ा लेते हैं। फीजियन मंगीती (भोज) में शामिल होना बड़े आदर और आनन्द की बात है। सैलानी केले, अनन्नास, अमरूद और अन्य ट्रॉपिकल फलों के अलावा डालो, कुमाला, कसावा आदि स्थानीय कंद-मूल का स्वाद लेना भी नहीं भूलता। और यहां की मछलियां तो स्वादिष्ट होती ही हैं।

फीजियन कोरो में सैलानी का स्वागत यंगोना (Yagona) के प्याले से किया जाता है। यह एक पारम्परिक रस्मी पेय होता है जो आदरणीय अतिथि को बड़े सम्मान के साथ भेंट किया जाता है। यह काली मिर्च जैसे पेड़ की जड़ को सुखा कर और उस पाउडर को पानी में घोलकर तैयार किया जाता है। यह फीजी का राष्ट्रीय पेय है। पीने वाले को शुरू-शुरू में यह स्वादिष्ट नहीं लगता, परन्तु बाद में इसमें मज़ा आने लगता है। इसमें थोड़ा-सा नशा भी होता है। उत्सवों में यंगोना बड़े समारोह के साथ तैयार किया जाता है और अतिथियों को भेंट किया जाता है। प्रत्येक सैलानी को इसे पीने का मौका मिलता है। फीजी विज़िटर्स ब्यूरो में उपस्थित होते ही यंगोना के प्याले से सैलानी का स्वागत किया जाता है और उन्हें भेंट किया जाता है एक रंगीन छपा-छपाया प्रमाणपत्र कि उन्हें फीजी-भर में यंगोना पीने की आज्ञा है।

यंगोना की तरह तंबुआ की भेंट भी बड़े आदर का प्रतीक होती है। तंबुआ ह्वेल मछली का दांत होता है। दांत के दोनों छोर बुनी हुई रस्सी से बंधे होते हैं। तंबुआ की भेंट सर्वोत्तम भेंट मानी जाती है और बड़े समारोह, आडम्बर और कर्मकाण्ड के साथ, जिसमें नाच, गाना और भाषण भी शामिल होते हैं, आदरणीय अतिथि को दी जाती है। हर परम्परागत समारोह में यंगोना का पीना, तंबुआ की भेंट और उसके बाद मैके (नृत्य) का प्रदर्शन सामान्य कार्यक्रम होते हैं। ये ऐसे रंगीन समारोह होते हैं कि उन्हें देखते ही बनता है। सैलानियों के कैमरों की खनक इन समारोहों को चित्रबद्ध करने के लिए लालायित रहती है।

जब फीजियन लोग नाचते हैं तो धरती को हिला देते हैं। वे नाचते हैं, और जी भरकर नाचते हैं। नाच पेश करने से पहले वे अपने शरीर को रंग-बिरंगे कागज़ों, फलों और पत्तों से सजा लेते हैं। नारियल के तेल और काले रंग से वे

अपने सुडौल अंगों को चमकाते हैं। 'वेसी' (भाला) नृत्य और 'क्लब' (मुगदर) नृत्य फीजियन पुरुषों के और 'ईरी' (पंखा) नृत्य, सेया-सेया नृत्य, 'वाका मालोली मैंके स्त्रियों के नृत्य हैं जिन्हें देखने के लिए सैलानी लालायित रहते हैं। कई वार तो गौरांगनाएं इतनी भावविभोर हो जाती हैं कि वे भीमकाय फीजियन नर्तक की सुडौल बांहों में लिपट जाना चाहती हैं।

आग पर चलने की क्रिया फीजी के सैलानियों का प्रमुख आकर्षण है। बेंगा द्वीप के सवाऊ कबीले के लोगों को ही आग पर चलने का कौशल परम्परा से प्राप्त है। कुछ और कबीलों के लोग भी, जो सवाऊ कबीले में आ मिले हैं, यह कार्य बखूबी कर सकते हैं। एक बारह-पन्द्रह फुट लम्बा-चौड़ा और तीन-चार फुट गहरा खड्ड खोदा जाता है। उसके भीतर चारों ओर बड़े-बड़े पत्थर लगा दिए जाते हैं। फिर उन पर बड़े-बड़े लकड़ी के लट्ठों की आग जला दी जाती है। जब आग की लपटें खतम हो जाती हैं तो जले हुए लट्ठे हटा दिए जाते हैं। नीचे के पत्थर आग से लाल हो जाते हैं। उसके बाद 'वूतो ओ' की जोर से ध्वनि की जाती है और आग पर चलने वाले लोग अपनी छुपने की जगह से निकलकर आग पर चलने के लिए उस खड्ड की पाल पर पंक्ति बनाकर खड़े हो जाते हैं और फिर एक कतार में बारी-बारी से उन गरम पत्थरों पर चलते हैं। उसके बाद गीत गाया जाता है।

भारतवंशियों द्वारा भी आग पर चलने का करतब दिखाया जाता है। पहले यह आग पर चलने की क्रिया कुछ निश्चित स्थलों पर या मन्दिरों में की जाती थी, परन्तु अब इसका प्रदर्शन व्यावसायिक तौर पर भी किया जाने लगा है। सूवा की हौवेल रोड के देवी के मन्दिर में साल में एक बार इसका प्रदर्शन बड़े भक्तिभाव से होता है।

लेवूका के उत्तर-पूर्व में एक मामूली-सा द्वीप है, जिसका नाम कोरो है। इस द्वीप का नादामाकी गाँव सैलानियों की दिलचस्पी का विषय है। कारण यह है कि यहां के लोग समुद्र में से बड़े-बड़े कछुए बुलाने में बड़े प्रवीण हैं। वे इसके लिए विशेष पोशाक और फूल-मालाएं पहनते हैं, एक पुरानी रस्म अदा करते हैं और फिर कछुओं को पुकारते हैं—और कछुए उनकी आवाज़ सुनकर पानी से बाहर निकलकर किनारे पर आ जाते हैं।

इसी प्रकार सूवा से पचास मील पश्चिम की ओर स्थित कंदावू द्वीप के

आग पर चलने का करतब—फीजीवासी तो यह करतब दिखाते ही हैं, भारतवंशी भी देवी-पूजा के रूप में इसे दिखाते हैं।

नमुआना गांव की स्त्रियां भी कछुए बुलाने में सिद्धहस्त हैं।

वीतीलेवू द्वीप के उत्तरपूर्वी कोने से कुछ दूर स्थित ननानू-ई-रा द्वीप पर एक अजीब नजारा दिखाई देता है। वहां पाल मिलर नाम का व्यक्ति पालतू कॉड मछलियों का स्कूल चलाता है। उन मछलियों की पाल से गहरी मित्रता है। वे पाल के पास खाना खाने के लिए आती हैं और सैलानी लोग भी इस दृश्य को देखने के लिए पहुंच जाते हैं।

प्रतिवर्ष सैलानियों की संख्या तीव्र गति से बढ़ती जा रही है। सवा पांच लाख की कुल जनसंख्या वाले इस देश में लगभग ढाई लाख सैलानी आने लगे हैं, जिनसे इसे साढ़े चार-पांच करोड़ डालर की आय होने लगी है।

# 6

## उद्योग-धन्धे

फीजी भारत के समान एक कृषि-प्रधान देश है। यहां हजारों एकड़ ज़मीन में तरह-तरह की फ़सलें उगाई जाती हैं। गन्ना, नारियल, चावल और अदरक तथा तम्बाकू यहां की प्रमुख फसलें हैं। इनके अलावा केला आदि कई प्रकार के फलों की भी खेती की जाती है और उन्हें विदेशों में भेजा जाता है। डालो, कुमाला, कसावा यहां के प्रमुख कन्दमूल हैं। आज भी खेती-बाड़ी यहां के लोगों का प्रमुख धंधा है।

फीजी की मुख्य पैदावार ईख है। 1870 से ही इसका व्यापार के लिए उत्पादन शुरू हो गया था। परन्तु इससे भी पहले विदेशी लोगों को यहां जिस उद्यम में दिलचस्पी पैदा हुई वह था कपास का उत्पादन। अमेरिका में गृहयुद्ध छिड़ जाने से प्रशान्त महासागर के अनेक द्वीपों में कपास की खेती आरम्भ हुई। फीजी में भी इसकी पैदावार बड़े पैमाने पर की जाने लगी। परन्तु यह धंधा बहुत दिनों तक नहीं चला और अमेरिका के गृहयुद्ध की समाप्ति के साथ इसका भी अंत हो गया।

अब यहां का मुख्य उद्योग चीनी का उत्पादन है। इसके लिए बड़े पैमाने पर गन्ने की खेती की जाती है। यही वह उद्योग है, जिसके कारण भारतीय लोग सर्व-प्रथम फीजी में आए थे। मेसर्स ब्रूअर एण्ड जोस्क नामक कंपनी ने 1870 में सर्व-प्रथम सूवा में एक चीनी की मिल स्थापित की थी। इसके लिए नावुआ और रेवा नदियों के मैदानों में गन्ने की खेती शुरू हुई। इसके बाद 1882 में कॉलोनियल शुगर रिफाइनिंग कंपनी नामक आस्ट्रेलियन कंपनी ने नौसूरी में एक बहुत बड़ी चीनी की मिल लगाई, जो 1959 में बंद हो गई। इसी कंपनी ने आगे चलकर राइवाई, लंबासा और लौतोका में अपनी मिलें स्थापित कीं।

गिरमिट के ज़माने में, फीजी में गन्ने के बड़े-बड़े फार्म होते थे और गोरे लोग उनके मालिक थे। भारतीय गिरमिटिया मज़दूर इन फार्मों में काम करते थे। परन्तु 1816 में गिरमिट प्रथा समाप्त हो जाने के बाद ये बड़े-बड़े फार्म भी समाप्त

हो गए और अब छोटे-छोटे खेतों में गन्ने की खेती की जाती है। गन्ना पैदा करने वाले लगभग सभी किसान भारतवंशी हैं। परन्तु उनमें से अधिकांश के पास अपनी ज़मीन नहीं है। ज़मीन का स्वामित्व या तो उक्त कंपनी के पास है या फिर नेटिव लैंड ट्रस्ट बोर्ड या राजसत्ता के पास। भूमिहीन किसान उनसे पट्टे पर कुछ वर्षों के लिए ज़मीन लेते हैं या फिर मज़दूर के रूप में खेती में काम करते हैं। लगभग सोलह हज़ार किसान गन्ने की खेती करते हैं, जिनमें से लगभग तीन हज़ार फीजियन हैं, बाकी भारतवंशी।

यहां चीनी का उद्योग सबसे बड़ा उद्योग है। जिसमें लगभग तीस हज़ार लोग काम करते हैं। करीब साढ़े तीन लाख टन चीनी तैयार की जाती है। यहां की मिलों में बनाई गई चीनी का नब्बे प्रतिशत से भी अधिक भाग दूसरे देशों, विशेष रूप से इंग्लैंड, अमेरिका, जापान, कनाडा, न्यूज़ीलैंड आदि को भेजा जाता है।

यह उल्लेखनीय है कि फीजी में 1 अप्रैल, 1973 से चीनी उद्योग का राष्ट्रीयकरण हो गया है। इसके फलस्वरूप उक्त आस्ट्रेलियाई कम्पनी का प्रभुत्व समाप्त हो गया है और एक राष्ट्रीय कम्पनी, फीजी शुगर मिल्स लिमिटेड ने सब काम संभाल लिया है।

चीनी के बाद खोपरा उद्योग की बारी आती है। नारियल के अधिकांश बागान वनुआलेवू, तेवयूनी, कन्दावू तथा लाऊ द्वीपों में हैं। इन बागानों के अलावा नारियल के जंगल भी हैं, जहां हज़ारों टन नारियल पैदा होता है। वर्ष में लगभग तीस हजार टन खोपरा पैदा होता है, जिसमें से अधिकांश ज्यों का त्यों या तेल के रूप में विदेशों में भेजा जाता है।

खोपरे से तेल के अलावा और कई चीज़ें तैयार की जाती हैं, जो पशुओं के चारे के काम में आती हैं। तेल से साबुन तैयार किया जाता है, जो आस-पास के द्वीपों को निर्यात भी किया जाता है।

उद्योग के अलावा नारियल फीजी के ग्रामीण जीवन का एक अभिन्न अंग है। इसकी लकड़ी और पत्तों से रहने के मकान (बूरे) बनाए जाते हैं। इसका पानी किसान के लिए एक आनंददायक पेय है। नारियल की जटा से चटाइयां, रस्सियां

और टोकरियां आदि तैयार की जाती हैं। इस प्रकार नारियल घरेलू उद्योग-धन्धों का भी आधार है। वनुआलेवू द्वीप के सुन्दर-से कोने में वैनीघाटा नामक स्थान पर नारियल का रिसर्च फार्म भी है।

गन्ना और नारियल के अलावा यहां बड़े पैमाने पर फलों की भी खेती की जाती है। फलों में केला यहां की मुख्य पैदावार है। फलों में सबसे अधिक विदेशी मुद्रा केले के निर्यात से प्राप्त होती है। पहले आस्ट्रेलिया को सबसे अधिक केला भेजा जाता था, परन्तु अब इसकी मात्रा बहुत कम हो गई है। जापान, न्यूज़ीलैंड आदि देशों में फीजी के केले की काफी मांग है। केले की खेती अधिकतर फीजियन किसानों द्वारा की जाती है।

केले के अलावा अनन्नास का उत्पादन भी बहुत किया जाता है। अनन्नास को डिब्बों में बंद करके विदेशों में भेजा जाता था, परन्तु इस समय ऐसी कम्पनी की, जो अनन्नास के टुकड़ों को और रस को डिब्बों में भरने का धंधा कर सके, कमी है। यहां का अनन्नास बहुत ही रसदार, मीठा और वज़नदार होता है। यहां एक स्थानीय फल भी होता है जिसे पैशनफ्रूट कहते हैं। इसका गूदा और रस डिब्बों में बंद करके निर्यात किया जाता है। इसके व्यापार में तरक्की हो रही है। यहां अमरूद भी काफी मात्रा में होता है। पर इसकी कद्र नहीं होती। इसे जंगली फल समझा जाता है। नगर के लोग तो इसे खाते भी नहीं हैं। मुझे खूब याद है जब मेरी अमरीका वाली पुत्री मेरे साथ तैलेवू के पास मोटर से जा रही थी और फलों से लदे अमरूदों के जंगल को देख कर मचल पड़ी थी। उस समय आसपास की फीजियन युवतियाँ इतनी चकित हुईं कि उन्होंने दौड़-दौड़कर अमरूद तोड़कर हमारी मोटर भर दी थी।

यहां का मुख्य अनाज चावल है, जो स्थानीय रूप से पैदा किया जाता है। गेहूं, बाजरा, जौ आदि अन्न पैदा करने की कोशिश नहीं की जाती। गेहूं आस्ट्रेलिया से आता है। चावल की खेती अधिकतर भारतवंशी किसानों द्वारा की जाती है। फीजी-भर में प्रतिवर्ष लगभग बीस हजार टन चावल की खपत होती है, जिसमें से बारह हजार टन यहां पैदा हो जाता है और बाकी अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि से मंगाया जाता है। भारत का बासमती चावल भी यहां मिल जाता है।

यहां सिगाटोका घाटी में और उसके आसपास कोई दो सौ एकड़ भूमि पर और नान्दी के चारों ओर की कोई ढाई सौ एकड़ जमीन पर तम्बाकू बोई जाती

है। इस तम्बाकू को साफ करने के लिए यहां दो कारखाने हैं। कोई डेढ़ हजार एकड़ जमीन में कोको की खेती भी की जाती है। रबर, कागज आदि उद्योगों के लिए भी यहां गुंजाइश है। मूंगफली भी बड़ी मात्रा में पैदा होती है और न्यूजीलैंड तथा आसपास के द्वीपों में भेजी जाती है। अदरक की पैदावार बहुत होती है और उसे अमेरिका, न्यूजीलैंड, हांगकांग को भेजा जाता है। लौतोका के पास शहद का कारखाना भी है। फीजी का शहद बड़ा प्रसिद्ध है।

खेती के बाद, पशुपालन फीजी के लोगों का एक अच्छा धंधा है। दूध और दूध से वनाए जाने वाले पदार्थों के लिए गायें वहुतायत से पाली जाती हैं। भैंसे यहां नहीं हैं। गायों की नस्ल बहुत अच्छी है और उनसे दूध और मक्खन वहुत अधिक मिलता है। नाबुआ और रेवा में वड़ी-वड़ी मक्खन की फैक्टरियां हैं। यहां दूध-घी भारत से भी काफी सस्ता है। भारतवंशियों की जरूरतों को पूरा करने के लिए घी वड़ी मात्रा में बाहर से भी मंगाया जाता है। डेरी उद्योग यहां का एक मुख्य व्यवसाय है और स्थान-स्थान पर सरकारी डेरियां मौजूद हैं।

फीजी के अधिकांश लोग मांसाहारी हैं। इसीलिए उनकी मांस संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सूअर, भेड़-बकरियां, मुर्गियां और खाने के काम आने वाले अन्य जानवर भी पाले जाते हैं।

मछली पकड़ना भी फीजी के लोगों की आजीविका का साधन है। यहां के समुद्र में और नदियों में भांति-भांति की मछलियों, कछुओं, केकड़ों की कोई कमी नहीं है। यहां के सब्जी बाजार इन्हीं समुद्री सब्जियों से भरे रहते हैं। फीजियन लोग मछली पकड़ने में बहुत माहिर हैं और बड़ा आनन्द लेते हैं। बड़ी-बड़ी मछलियां जो दो सौ पौंड वजन तक की हों, उनसे जूझ पड़ते हैं। ट्यूना मछली फीजी द्वीपों के आसपास बहुतायत से मिलती है। जापानी और कोरिया की बड़ी-बड़ी मछलीमार नौकाएं, जिन्हें छोटे जहाज ही समझिए, ट्यूना का शिकार करती हैं। यूं तो मैकरनैल नाम की मछली भी बड़ी स्वादिष्ट समझी जाती है, परन्तु ट्यूना इतनी बड़ी और भारी होती है कि उसे यंत्रों से ही काबू में किया जा सकता है। कांटे उसमें कम होते हैं। हड्डियां आसानी से साफ कर दी जाती हैं।

खान उद्योग यहां का एक भारी उद्योग है, जिससे बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। फीजी की जमीन में तांबा, लोहा, एल्यूमीनियम, फास्फेट, मैंगनीज आदि खनिज पाए जाते हैं। परन्तु सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण खनिज सोना है। यहां

फीजी के लोग मछली पकड़ने में
बड़े माहिर हैं।

की खानें विदेशी कम्पनियों द्वारा चलाई जाती हैं और सरकार को रायल्टी प्राप्त होती है।

सबसे पहले सन् 1929 में यहां वनुआलेवू द्वीप में काशीपर्वत में सोने की खोज की गई थी। यहां करीब ग्यारह वर्ष तक खनिज सोना निकलता रहा। वीतीलेवू के ताबुआ क्षेत्र में सोने के भण्डार हैं और यहीं पर सोने की तीन प्रसिद्ध खानें—एम्परर, लोलोमा और डोल्फिन हैं। इन खानों से बड़ी तादाद में सोना निकाला गया है। अब लोलोमा और डोल्फिन में उत्पादन समाप्त हो गया है। ताबुआ क्षेत्र की खानें फीजी की अर्थ-व्यवस्था का ठोस आधार रही हैं। इनसे प्रतिवर्ष करीब सत्तर लाख डालर मूल्य का सोना बाहर भेजा जाता रहा है।

इस समय फीजी में बनने वाली वस्तुओं में मुख्य हैं एल्यूमीनियम की वस्तुएं, कांटेदार तार, बैटरियां, बीयर, बिस्कुट, डिब्बा बंद मांस और फल का रस व सिगरेट, कपड़ा, कंकरीट की वस्तुएं, मिठाइयां, पेय पदार्थ, शीशे का सामान, फर्नीचर, दस्तकारी का सामान, शहद, गहने, आइसक्रीम, औद्योगिक गैसें, दियासलाइयां, कील-कांटे, रंग-रोगन, इतर-फुलेल, डिब्बे, प्लास्टिक का सामान, रबर के जूते, तम्बाकू, लोहेकी वस्तुएं, साबुन, धुलाई के पाउडर, छाते, तार की बनी चीजें, मोमबत्तियां, खेती के छोटे-छोटे औज़ार, लकड़ी का सामान आदि। परन्तु आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए फीजी को बहुत कुछ करना है।

पर्यटन और अन्य उद्योग-धंधों की आवश्यकताओं को देखते हुए संचार और परिवहन की व्यवस्था में बहुत सुधार हो गया है। आज का फीजी इस दृष्टि से बदल गया है। अब पाल और हाथ से चलने वाली नावें बहुत कम दिखाई देती हैं, मशीनों से चलने वाले जहाज़ों ने फीजी के बंदरगाहों को आपस में और विदेशों से मिला दिया है। परन्तु अभी तक भारत और फीजी के बीच सीधी जहाज़ी सेवा नहीं है।

**आने-जाने के साधन**—3 सितम्बर, 1939 को जिस दिन यूरोप में द्वितीय महायुद्ध की ज्वाला पहली बार भड़की थी, उसी दिन पैन-अमेरिकन एयरवेज़ का जहाज़ 'कैलिफोर्नियन क्लिपर' सिडनी और सानफ्रांसिस्को के बीच एक आज़माइशी उड़ान के लिए सूवा आया था। कुछ दिनों बाद एक ब्रिटिश हवाई जहाज़ भी सूवा आया। 1940 तक हवाई सेवा नियमित होने लगी।

द्वितीय महायुद्ध ने फीजी की हवाई सेवा में एक क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया। युद्ध की आवश्यकताओं को देखते हुए नान्दी हवाई अड्डे का अभूतपूर्व

विकास किया गया। और आज यह प्रशान्त महासागर का एक प्रमुख अंतर्देशीय हवाई अड्डा है। एयर इंडिया का एक 707 जेट प्रति सप्ताह वम्वई से नान्दी आता है और वापस जाता है। नान्दी के अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे के अलावा, नौसूकी, लंवासा, सावू-सावू, मतेई, बुरेता और लकैम्वा यहां के भीतरी हवाई अड्डे हैं, जो स्वदेशी हवाई सेवा से आपस में जुड़े हुए हैं।

यहां का सड़क परिवहन अलवत्ता कुछ पिछड़ा हुआ है। नगरों और प्रमुख गांवों के वीच अधिकतर कच्ची सड़कों का प्रबन्ध है। फिर भी इस छोटे-से देश में डेढ़ हज़ार मील से भी अधिक लम्बी सड़कें हैं। सवसे वड़ी सड़क समुद्र के किनारे-किनारे वीतीलेवू का चक्कर लगाती है। इसकी लम्वाई 317 मील है। सूवा से लौतोका तक के पश्चिमी भाग को क्वीन्स रोड और पूर्वी भाग को किंग्स रोड कहते हैं। यह वीतीलेवू के प्रमुख नगरों और गांवों को आपस में जोड़ती है। यात्रियों की सुविधा के लिए वस-व्यवस्था संतोषजनक है। स्कूटर और साइकिलें नहीं के वरावर हैं। लेकिन आश्चर्य की वात तो यह है कि यात्रा के लिए रेलगाड़ी नहीं है। हां, खेतों से मिल तक गन्ना ढोने के लिए साउथ पैसिफिक शुगर मिल लि० की ओर से छोटी रेलगाड़ी की व्यवस्था अवश्य है, जिसमें लोग मुफ्त में कुछ दूर तक यात्रा कर लिया करते हैं। यह रेलगाड़ी लगभग साढ़े चार सौ मील तक दो फुट गेज की लाइन पर चलती है। इस कम्पनी के पास लगभग तीस छोटे भाप इंजन, सोलह डीज़ल इंज़न और साढ़े पांच हजार गन्ना ढोने के डिव्वे हैं, जिनमें अधिकतर भारतवंशी किसान मुफ्त यात्रा करते हैं। जव पहली वार सी० एस० आर० कम्पनी ने फीजी के सामंतों से ज़मीन ली तो उन्होंने इस वात की शर्त बांध दी कि इस रेलगाड़ी पर उनके लोगों को बिना-पोत यात्रा करने की सुविधा होगी। राष्ट्रीयकरण के बाद इस शर्त में परिवर्तन करने की वात को भी उन्होंने नहीं माना।

जन-संपर्क के अन्य साधनों में फीजी रेडियो प्रमुख है। इसपर अंग्रेज़ी, हिन्दी और फीजियन तीनों भाषाओं में कार्य-क्रम आते हैं। इसी प्रकार यहां तीनों भाषाओं में समाचार-पत्र निकलते हैं। दैनिक समाचार पत्र अब केवल एक है, जो अंग्रेज़ी में निकलता है। कई साप्ताहिक और मासिक पत्र निकलते हैं।

यहां अब तक टेलीविज़न सेवा नहीं है, पर शायद शीघ्र ही इसकी व्यवस्था कर दी जाएगी।

7

## संस्कृतियों का संगम

आज का फीजी एक बहुजातीय देश है, जिसमें तीन प्रमुख जनधाराएं दृष्टिगोचर होती हैं। नवीनतम अनुमान के अनुसार फीजी की कुल जनसंख्या 5,45,205 है, जिसमें 2,36,694 फीजियन और 2,77,248 भारतवंशी और शेष लोग यूरोपियन, अर्द्ध यूरोपियन दक्षिण प्रशान्त द्वीपीय और चीनी उद्भव के हैं। विभिन्न जनधाराओं की यह त्रिवेणी लगभग पिछली एक शताब्दी से संसार के और देशों के मुकाबले में अधिक समरसता के साथ बराबर बहती रही है, यद्यपि इसमें कभी-कभी किसी प्रकार की मलिनता या कलुषता बाहर से मिलाने का प्रयत्न भी किया गया है।

यहां की मूल जनधारा फीजियन यानी काईवीती लोगों की है, जो यहां के मूलनिवासी हैं, हालांकि उनके बारे में भी यह कहा जाता है कि वे स्वयं भी बाहर से ही यहां आए हुए हैं। काईवीती लोग कब और कहां से आए, इसके बारे में अनेक मत और दंतकथाएं प्रचलित हैं। कुछ लोगों का मत यह है कि काईवीती लोग शायद अफ्रीका से यहां आए थे। इनके हबशियों जैसे घुंघराले बाल इस मत की पुष्टि करते हैं। दूसरे, यहां के कई स्थानों के नाम उन स्थानों के नामों से मिलते-जुलते हैं, जो अफ्रीका की टांगानिका झील के आस-पास हैं। कुछ विद्वानों की राय है कि ये लोग एशियाई उद्भव के हैं और इंडोनेशिया के दरवाज़े से निकल कर प्रशान्त के इन सुखद द्वीपों में बस गए थे। फीजी का सौ साल पुराना दैनिक पत्र फीजी टाइम्स इसी राय को मान्यता देता रहा है। कुछ लोगों का मत यह भी है कि ये लोग दक्षिण अमेरिका से किश्तियों में आए थे और फिर यहीं बस गए। फ़िर भी यहां निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु काईवीती लोगों के नैन-नक्श, आचार-व्यवहार और रंग-ढंग को देखकर कभी-कभी यह शक होने लगता है कि कहीं ये लोग मूलतः भारत के किसी भाग से तो यहां नहीं आए

थे। मैत्री भाव और अतिथि-सत्कार जो भारतवासियों का प्रमुख गुण माना जाता है, वह इन लोगों में तो और भी कूट-कूट कर भरा हुआ है। उनका दिल खोलकर हंसना और अपने मेहमानों का, यहां तक कि राह चलते हुए मिलने वाले हरेक व्यक्ति का, मुस्कराकर अभिनन्दन करना इनके सरल हृदय का द्योतक है।

यह माना जाता है कि आज का फीजियन जनमुदाय मलनेशियन और पोलीनेशियन लोगों का मिश्रण है। जहां मलनेशियन प्रभाव अधिक है, वहां मातृ-वंश को अधिक प्रधानता दी जाती है, क्योंकि मलनेशियन लोगों की समाज-व्यवस्था मातृप्रधान थी। परन्तु जहां पोलीनेशियन प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, वहां समाज में पितृप्रधानता पाई जाती है। फीजी की सामन्त-पद्धति पोलीनेशियन प्रभाव की देन है। इसी प्रकार इनके डील-डौल, चेहरा-मोहरा और रंग-रूप पर भी इन दोनों जातियों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कुछ लोगों का रंग काला होता है और कद भी छोटा होता है, पर लाऊ जैसे स्थानों के लोग बड़े सुन्दर होते हैं। उनके कद लम्बे, रंग साफ और नैन-नक्श सुन्दर होते हैं। चेहरे की बनावट बहुत कुछ उत्तर भारतीयों से मिलती-जुलती होती है। रोतूमा द्वीप के लोग बहुत कुछ पंजाबियों से मेल खाते हैं। फीजी के फौज के अध्यक्ष कर्नल मैन्यूली जो1972 में पहली बार भारत आये थे, उन्हें 'पंजाबी' कहलाना बड़ा पसन्द था।

काईवीती लोगों का रहन-सहन बहुत कुछ आदिवासियों जैसा ही रहा है। वे खुली हवा में प्राकृतिक सुन्दरता से परिपूर्ण शांतिमय वातावरण में रहना अधिक पसन्द करते हैं। वे अधिकतर छोटे-छोटे गांवों (कोरो) में रहते हैं, जो समुद्रतट के नजदीक या किसी नदी-नाले के पास बसे होते हैं। यद्यपि ये गांव किसी खास योजना के अनुसार नहीं बसे होते, परन्तु साफ-सुथरे बहुत होते हैं। काईवीती लोग मूलतः सफाई-पसन्द होते हैं। गांव, आबादी के लिहाज से बहुत बड़े नहीं होते। इनकी आबादी ज्यादा से ज्यादा दो-तीन सौ के करीब होती है। घर (बूरे) ज्यादातर घासफूस के बने होंते हैं। अब लकड़ी के घर बनाने का रिवाज फिर चल पड़ा है। कोरो यानी फीजियन गांव काईवीती लोगों की सामाजिक व्यवस्था का आधार है। हरेक कोरो का प्रबन्ध एक विशेष पद्धति से किया जाता है, जिसे मतंगली कहते हैं। मतगली व्यवस्था एक बड़े परिवार के समान है। अधिकतर कोरो में एक ही मतंगली के सदस्य रहते हैं, पर कुछ कोरो ऐसे भी मिलेंगे, जहां एक से अधिक

मतंगलियां हैं। मतंगली के वड़े-वूढ़े सदस्यों को मां-वाप जैसी इज्जत मिलती है और बच्चों को विना किसी प्रकार के भेदभाव के सबसे प्यार मिलता है। कुछ जगह मतंगली की भी शाखाएं होती हैं, जिन्हें टोका-टोका कहा जाता है। बच्चे समाज की दौलत समझे जाते हैं। उनमें वर्णसंकर आदि जैसे भेद नहीं किए जाते। अधिकतर माताएं बता ही देती हैं कि बच्चे के असली पिता का क्या नाम है। उसी के नाम से उसका वंश चलता है। कई मतंगलियों के समूह को 'यावूसा' कहते हैं। इसे एक काईवीती जाति कह सकते हैं। यावूसा की मुख्य जाति को मतंगली का तुरंगा कहा जाता है। कई यावूसाओं से मिलकर वनुआ और मतानितू बनते हैं। यूरोपियन लोगों के आगमन के समय यहां कई छोटे-वड़े मतानितू थे, जिन्हें सामन्त राज्य कहा जा सकता है।

एक ज़माना था जव काईवीती लोग नितांत आदिवासियों जैसी अवस्था में जंगलों में रहा करते थे। पड़ोसी सामंत राज्यों से समय-समय पर युद्ध करना उनका शौक था। यूरोपियन लोगों की दृष्टि में वे ब्रिलकुल जंगली थे। वे आदमियों को मारकर खा जाया करते थे। सामंत की मृत्यु के बाद विधवाओं का बलिदान कर दिया जाता था। कुछ धार्मिक या सामाजिक समारोहों में आदमियों की वलि दी जाती थी या उन्हें जिन्दा दफना दिया जाता था। कहीं युद्ध शुरू करने से पहले इस प्रकार की कुर्बानी ज़रूरी मानी जाती थी। वे कई देवताओं की पूजा करते थे। वे अपने वीर पूर्वजों को देवताओं की तरह मानते थे और उनकी उपासना करते थे। वे जादू-टोने में विश्वास करते थे और यह मानते थे कि बीमारी, मृत्यु अकाल, आदि दुर्घटनाएं क्रूर देवी-देवताओं के प्रकोप का परिणाम है। परन्तु इन सब दुर्गुणों और अंधविश्वासों के बावजूद वे काफी सरल हृदय, उदार और मेहमाननवाज़ होते थे। उनकी अपनी एक सम्पन्न संस्कृति थी, एक सुसंगठित सामाजिक व्यवस्था थी जो पुरानी परम्पराओं और रूढ़ियों पर आधारित थी। परन्तु अव तो यह इतिहास की वात रह गई है।

ज़माना वहुत बदल गया है। काईवीती समाज भी आधुनिक सभ्यता के रंग में रंगता जा रहा है। ईसाई धर्म के प्रचार के साथ-साथ शिक्षा और आधुनिक रहन-सहन गांव में फैल रहा है। गांव में शिक्षा के प्रसार के कारण बुरी प्रथाएं और अंधविश्वास दूर होते जा रहे हैं। फिर भी काईवीती समाज बहुत ही परम्पराप्रिय है। उनकी पुरानी रीतियां और रस्म-रिवाज आज भी बराबर चल

रहे हैं, हालांकि उनमें कुछ थोड़ा-बहुत परिवर्तन अवश्य हो गया है। यंगोना और तंबुआ की भेंट के बारे में पहले बताया जा चुका है। दोनों ही रस्में बहुत ही आदर की सूचक हैं और आज भी काईवीती समाज का अभिन्न अंग हैं। 'लाला' और 'केरे केरे' की पुरानी रीतियां भी अब तक चल रही हैं, परन्तु कम होती जा रही हैं। 'लाला' की प्रथा के अनुसार, गांव के हर व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह गांव के मुखिया का हमेशा सत्कार करे, उसकी सेवा-चाकरी करे, अपनी खेती में से या पकड़ी हुई मछली में से कुछ हिस्सा उसे भेंट करे। 'केरे केरे' की रीति के अनुसार गांव का कोई भी आदमी अपने किसी भी ग्रामवासी से कोई चीज़ मांग सकता है। केवल उसको परम्परानुसार 'केरे केरे' करना होगा। जिस आदमी के पास वह चीज होगी, वह उसे इन्कार नहीं कर सकता। लेने वाला आदमी चाहे तो उधार समझकर बाद में लौटा दे, नहीं तो सदा के लिए हज़म कर ले। आज के इस ज़माने में जब हर आदमी अपनी व्यक्तिगत उन्नति में लगा है, यह प्रथा बड़ी अजीब और दिलचस्प मालूम होती है। यह प्रथा जहां एक ओर देने वाले हृदय की विशालता की सूचक है, वहां दूसरी ओर इससे काईवीती समाज को हानि भी बहुत पहुंची है, क्योंकि इससे लेने वाले व्यक्ति में स्वयं मेहनत करके कुछ कमा लेने की प्रवृत्ति कम होती गई है। परन्तु नई पीढ़ी के लोगों में यह प्रथा घटती जा रही है।

अब शिक्षा का प्रसार के कारण और सरकारी प्रयत्नों के फलस्वरूप बहुत-सी ऐसी परम्परागत रीतियां, जो समय के अनुकूल नहीं हैं, धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही हैं। काईवीती समाज का पुराना सामुदायिक ढांचा भी लड़खड़ा रहा है। गांव के मुखिया की नियुक्ति वंश परम्परा से नहीं, बल्कि चुनाव के आधार पर होने लगी है। उसके अधिकार भी कम होते जा रहे हैं। सामाजिक दायित्व भी कम होते जा रहे हैं। बहुत-से लोगों ने अपने समुदाय से हटकर अपने निजी काम-धंधे शुरू कर लिए हैं। वे सामूहिक खेती की बजाय अपनी अलग खेती करते हैं। घरेलू उद्योग-धन्धे भी बढ़ रहे हैं। चटाई बनाना, मासी कपड़ा (वल्कल वस्त्र) तैयार करना, मछली पकड़ने के जाल गूंथना, मिट्टी के बर्तन, टोकरियां और लकड़ी के प्याले और कठौते तैयार करना आदि कार्य जो पहले सम्मिलित रूप से किए जाते थे अब निजी तौर पर किए जाने लगे हैं। इन उद्योग-धन्धों में काफी बढ़ोतरी हुई है, क्योंकि काम करने वाले को सीधी अपनी मेहनत का फल

मिल जाता है।

काईवीती लोग उद्योग-धन्धों की अपेक्षा खेती-बाड़ी के काम में अधिक कुशल हैं। नारियल और केले के बागानों में काम करना उनका मुख्य धन्धा है। अपने खाने-पीने की चीजें जैसे डालो, कुमाला, कसेवा, दारुका आदि वे अपने गांव की जमीन में ही पैदा कर लेते हैं। गांव के आसपास की भूमि में यंगोना के बागान लगाते हैं। मछली पकड़ना तो इनका परम्परागत धन्धा है ही, परन्तु दूकानदारी करना अभी तक इनके बस की बात नहीं है। हालांकि अब काईवीती युवक और युवतियां बड़े-बड़े डिपार्टमेंटल स्टोरों में विक्रीकार (सेल्समैन) की नौकरी सफलतापूर्वक करने लगे हैं। शिक्षित युवक और युवतियां व्यावसायिक फर्मों और सरकारी कार्यालयों में जिम्मेदारी के पदों पर काम करने लगे हैं। बहुत से काईवीती ऊंचे प्रशासनिक पदों पर भी आसीन हैं। सूवा में विश्वविद्यालय खुल जाने के बाद, काईवीतियों का ध्यान उच्च शिक्षा की ओर भी गया है। अनेक काईवीती छात्र विदेशों में भी उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। भारत में शिक्षा पाने वाले काईवीती छात्रों की संख्या भी कम नहीं है। उनमें से कई छात्र भारत सरकार की छात्रवृत्तियां प्राप्त कर रहे हैं।

लेकिन काईवीतियों के बारे में सबसे दिलचस्प जो बात है, वह है उनका जीवन से प्यार । वे जीवन को बोझ नहीं समझते, बल्कि हर घड़ी जीना चाहते हैं। वे एक-एक पल का मजा लेना चाहते हैं। वे समय को धक्का देकर गुजारना नहीं जानते, बल्कि उसका आनन्द लेते हैं। उन्हें न भविष्य की चिन्ता है और न बीते दिनों का गम। वे तो वर्तमान को ही सब कुछ समझते हैं। इसीलिए तो उनके जीवन में उल्लास है, हँसी-खुशी है, रंगीलापन है। खेल-कूद और रागरंग उनके जीवन के अभिन्न अंग बन गए हैं। पर इसका मतलब यह नहीं कि वे लापरवाह या निकम्मे हैं। बल्कि उनका जीवनदर्शन ही कुछ ऐसा है कि वे खुशी-खुशी अपने कामों और ज़िम्मेदारियों को निपटा लेते हैं। सिर्फ वर्तमान से उलझते हैं, भविष्य की चिन्ता नहीं करते। इसीलिए उनके चेहरे पर सदा बेफिक्री की रौनक दिखाई देगी। उनके अंग-अंग में फुर्ती और जान नज़र आएगी। होंठों पर मुस्कान दिखाई देगी। खेल के मैदान और क्लब रूम में आप उन्हें असली रूप में पाएंगे। सप्ताहान्त की संध्याएं मानो उनके जीवन का तत्व हैं।

फीजी की उल्लास और स्पंदन से परिपूर्ण इस जनधारा के साथ-साथ जो

दूसरी जीवनधारा वह रही है, वह है भारतवंशियों की, जिसमें अधिक गंभीरता है, अधिक कर्मठता और सोद्देश्यता भी। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, इस धारा का प्रवाह 5 मई, 1879 के दिन प्रारम्भ हुआ था, जब 481 भारतीय नर-नारियों से भरा हुआ पानी का जहाज 'लेवनीदास' फीजी के लेवूका बन्दरगाह पर किनारे लगा था। यह प्रवाह 1916 तक निरन्तर चलता रहा और इसके द्वारा गिरमिट प्रथा के अन्तर्गत लगभग त्रेसठ हज़ार भारतीय यहां आए, जिनमें पच्चीस हज़ार वापस लौटकर गए और बाकी यहीं बस गए और स्वतन्त्र रूप से खेती और अन्य काम-धंधा करने लगे।

मासी कपड़ा (वल्कल वस्त्र)
तैयार करने की कला

भारतवासियों का एक दूसरा प्रवाह इस शताब्दी के कोई तीसरे दशक में प्रारम्भ हुआ। इस प्रवाह के अन्तर्गत आए लोग भी जीविको पार्जन के लिए ही आए थे, परन्तु किसी गिरमिट (एग्रीमेंट) में बंधकर नहीं, वल्कि स्वतन्त्र रूप से अपना व्यापार-व्यवसाय करने के लिए यहां आए थे। ये लोग अधिकतर गुजरात के विभिन्न जिलों, विशेषकर सूरत और नवसारी से थे। भारत के अन्य प्रान्तों विशेषकर पंजाव से भी कुछ लोग स्वतंत्र रूप से खेती या व्यापार के लिए यहाँ आए और अपनी व्यावसायिक सफलता के कारण यहीं बस गए और अन्ततः उन्होंने यहां की नागरिकता स्वीकार कर ली। अब वे स्थानीय जनता के अभिन्न अंग हैं।

इस समय फीज़ी में कोई दो लाख अस्सी हज़ार भारतवंशी हैं, जो खेती, व्यापार, उद्योग धंधे, सरकारी तथा निजी नौकरी तथा अन्य प्रकार के निजी कारोबार करते हैं। उनकी सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक स्थिति अपेआकृत काफी अच्छी है। अधिकांश के पास सभी प्रकार के सुख-साधन हैं। वहुत-से गुजराती व्यापारी काफी साधन संपन्न हैं। सरकारी नौकरियों में भी वहुत-से भारतवंशी उच्च पदों पर हैं। कुछ विभागाध्यक्ष भी हैं। राजनीतिक क्षेत्र में भी उनकी अच्छी प्रतिष्ठा है। इस समय विरोधी दल के नेता भी पुराने तेलुगूवंशी हैं।

प्रारंभ में यहां जो भारतीय लोग आए थे वे विभिन्न जातियों, धर्मों और संप्रदायों के थे। परन्तु जहाज़ी सफर और कुली जीवन की परिस्थितियां कुछ ऐसी थीं कि उनमें अपने-आप ही धर्म-समन्वय हो गया। मूल मानव धर्म की विभिन्न शाखाओं में जो कट्टरता के कांटे थे, वे इस जीवन-संघर्ष की रगड़ से टूटकर कुछ तो समुद्र में ही झड़ गए थे और बाकी यहां आकर गिर गए। भिन्न-भिन्न संप्रदायों में सुकोमलता और सहिष्णुता आ गई। सब धर्म वाले एक-दूसरे के समारोहों-उत्सवों आदि में हिस्सा लेने लगे। यहां तक कि हिन्दू ताजिए निकालने लगे और मुसलमान होली खेलने लगे। कोई भेदभाव रहा ही नहीं। हालांकि ऊपर से हिन्दू, मुसलमान, सिख और ईसाई सभी अलग-अलग थे।

इसी प्रकार वर्णव्यवस्था की कठोरता भी नहीं रही। भारतीय लोग छुआछूत को तो जहाज में ही मसलकर समुद्र में डाल आए थे। नये समाज की नींव स्वतः ही पड़ गई। कोई छोटा-बड़ा नहीं रहा। सब बराबर हो गए। परिवारों का गठन भी नये सिरे से हुआ। जहाजी संबंध पैदा हो गए। जहाज में जिसको भाई मान

लिया गया वह भाई बन गया और जिसको बहन मान लिया गया वह बहन। इसी प्रकार चाचा-ताऊ आदि भी बन गए।

जिस प्रकार यहां वर्ण-व्यवस्था में शिथिलता आई, उसी प्रकार धार्मिक-संस्कारों में भी, मुख्य रूप से दो संस्कार—विवाह और अंत्येष्टि ही बाकी रह गए यद्यपि जातकर्म संस्करा नहीं रहा, किन्तु जन्मदिन को बड़ा महत्त्व दिया जाने लगा और कोई भी अपने बच्चे का जन्मदिन हर साल मनाना नहीं भूलता। विवाह और अत्येष्टि के संबंध में भी लंबे-चौड़े कर्मकांड की पद्धति नहीं रही। विवाह के लिए तो पहले रजिस्ट्री करानी पड़ती है, फिर संस्कार होता है। यह गिरमिट की देन है। यहां पंडितों को भी पंडिताई करने के लिए अपने-आपको डाक्टरों की तरह रजिस्टर करवाना पड़ता है। यहां आश्विन मास में पितृपक्ष में श्राद्धकर्म आदि की प्रथा समाप्त हो गई है। कनागतों में काकबलि देने के लिए कौआ ही नहीं मिलता।

इस समय फ़ीजी के भारतवंशी समाज में सभी धर्मों और संप्रदायों को मानने वाले लोग हैं और वे बड़ी समरसता और सौमनस्य के साथ रह रहे हैं। हिन्दू धर्मावलंबियों की संख्या सबसे अधिक है और उनमें भी सनातनधर्मी सबसे ज्यादा। फीजी-भर की एक सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा है। वह अनेक प्रकार के सांस्कृतिक और धार्मिक कर्म करती है। शिक्षा के क्षेत्र में भी उसका योगदान है। उसकी देखरेख में कई स्कूल और शैक्षिक संस्थाएं चलती हैं। नसीनू में एक ऋषिकुल भी है। राम,कृष्ण, शिव, हनुमान, गणेश, लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती आदि अनेक देवी-देवताओं के मंदिर हैं। मंदिरों के सुचारु रूप से संचालन के लिए सुयोग्य समितियां बनी हुई हैं। मंदिरों में समय-समय पर भजन, कीर्तन, धर्मोपदेश, कथा-भागवत, प्रवचन आदि अनेक कार्यक्रम होते हैं। जन्माष्टमी, रामनवमी, शिवरात्रि आदि अनेक धार्मिक पर्व बड़ी धूमधाम से मनाये जाते हैं। सूवा में ज्ञानमंदिर नाम का एक रामचंद्रजी का मंदिर है, जिसका सभा-भवन अति विशाल है। इसमें समय-समय पर सभी धार्मिक पर्व मनाए जाते हैं। इसी प्रकार नान्दी,लौतोका, बा आदि सभी मुख्य शहरों में अनेक छोटे-बड़े मंदिर हैं। दक्षिण भारतीय मंदिरों में आग पर चलने की क्रिया का प्रदर्शन किया जाता है जिसे लोग दूर-दूर से देखने के लिए आते हैं।

फीजी में आर्य समाज की स्थापना सन् 1904 में हुई थी। तब से वह

न्यूनाधिक रूप से सक्रिय रहा है। यहां के आर्य समाजियों ने स्वामी दयानन्द के उपदेशों को अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न किया था। सभी वड़े-वड़े नगरों में आर्य समाज के मंदिर और सभाभवन हैं, जहां यज्ञ और प्रवचन होते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में फीजी के आर्य समाज का योगदान कभी नहीं भुलाया जा सकता। इस समय उनकी कोई वीस शैक्षिक संस्थाएं चल रही हैं जिनमें सूवा का डी० ए० वी० गर्ल्स कालेज, डी० ए० वी० कालेज़ फार व्वायज़ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सावेनी में एक गुरुकुल भी हैं। यदि यों कहा जाए कि सार्व प्रादेशिक सभा का कार्यक्षेत्र तो अव इन शिक्षा-संवंधी कार्यों तक ही सीमित है तो भी अत्युक्ति नहीं होगी।

यहां सिख धर्म को मानने वालों की कमी नहीं है। सूवा के सामावूला क्षेत्र में पहाड़ी पर स्थित गुरुद्वारा अपनी गरिमा के कारण अपने धर्मावलंवियों को वरवस अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। वहां से गुजरने पर "वोले सो निहाल सत श्री अकाल" का जैकारा राहगीरों का ध्यान खींच लेता है। तांगी-तांगी, लौतोका और लंवासा में भी वड़े गुरुद्वारे हैं। इन गरूद्वारों में ग्रंथी भारत से ही वुलाए जाते हैं। यहाँ गुरुमुखी लिपि तथा पंजावी भाषा भी पढ़ाने की व्यवस्था है। गुरुद्वारा प्रवंधक समितियां और अन्य सिख संस्थाएं खालसा स्कूल भी चलाती हैं और शैक्षिक उन्नति में योगदान दे रही हैं। वा और लौतोका के किसान अभी भी पंजाबीपन पर वड़ा गौरव करते हैं। मुझे वह दिन याद आता है जव गुरु नानक के जन्मदिन पर मुझे लौतोका गुरुद्वारे में विशेष वक्ता के रूप में आमंत्रित किया गया था।

इनके अलावा अन्य पंथों जैसे कवीरपंथियों, रामानंदियों के धर्मस्थान भी बहुत हैं। फीजी में इस समय अन्य वहुत-सी धार्मिक और आध्यात्मिक संस्थाएं भी चल रही हैं। नान्दी में रामकृष्ण मिशन का आश्रम है। यहां प्रति सप्ताह श्रीमद्भगवद्गीता पर प्रवचन होता है। आश्रम की देखरेख में अनेक सांस्कृतिक और शैक्षिक कार्यक्रम होते हैं। उसके अंतर्गत लड़कों और लड़कियों के लिए हाई स्कूल, एक व्यायामशाला और पुस्तकालय चलते हैं।

वहां डिवाइन लाइफ सोसाइटी की गतिविधियां भी चलती हैं। इसी प्रकार साई वावा और वाल योगेश्वर के मानने वालों की भी कोई कमी नहीं है। साई बावा यहां के गुजराती समाज में वहुत ही अधिक लोकप्रिय हैं। दुकानों और
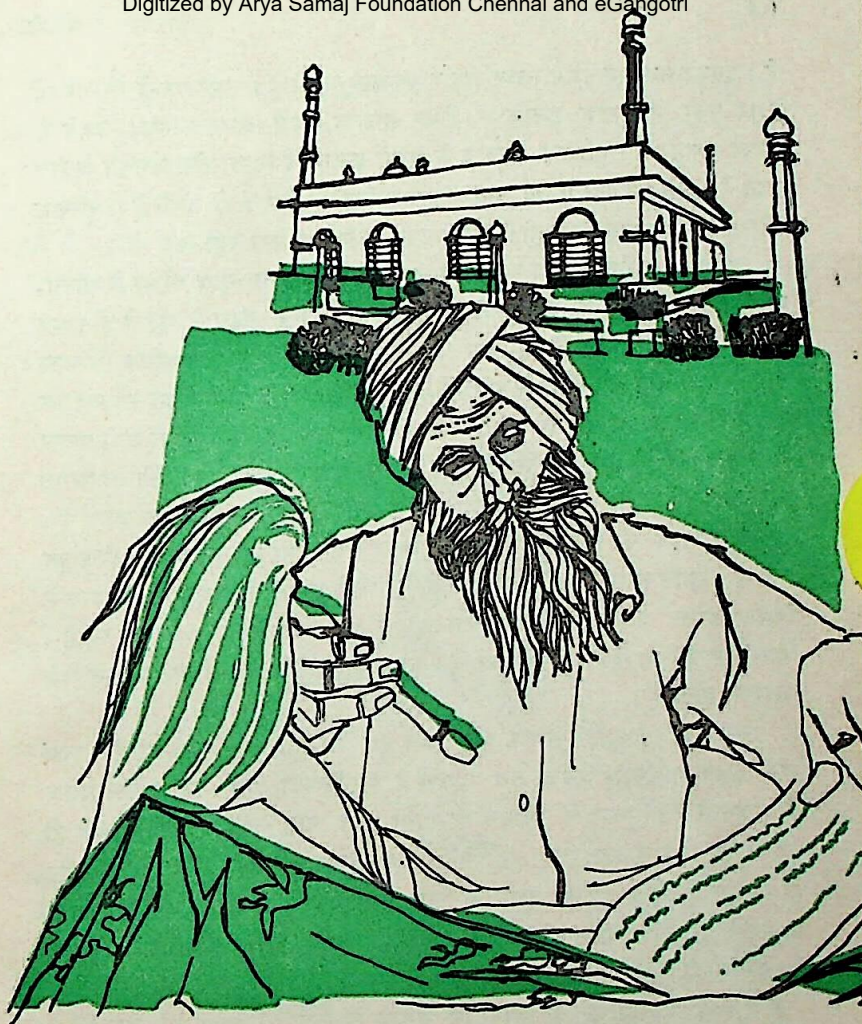
सूवा का गुरुद्वारा

घरों में चारों ओर उनके चित्र दिखाई पड़ेंगे। साईं वावा के त्राल टिपिकल फिजियन जैसे हैं।

यहां के मुसलमानों में शिया, सुन्नी, अहमदिया आदि सभी संप्रदायों के लोग

हैं। इनकी संख्या लगभग सत्तर हज़ार वतलाई जाती है। सभी नगरों में मस्जिदें हैं पर सूवा में तूराक इलाके में स्थित मस्जिद, जिसे जामा मस्जिद कहते हैं, काफी मशहूर है। मुस्लिम समुदाय के लोगों द्वारा कई स्कूल और मकतवे चलाए जाते हैं। इन मकतबों में उर्दू तथा कुरान शरीफ की शिक्षा दी जाती है। मुस्लिम लीग नये-नये स्कूल वना रही है और भारत से शिक्षक मंगा रही है।

स्थानीय परिस्थितियों को देखते हुए, समय के साथ-साथ फीजी के भारत-वंशियों के रीति-रिवाज, वेश भूषा, खान-पान और रहन सहन में वाहरी तौर पर कुछ थोड़ा-वहुत परिवर्तन हो गया है, पर मूल रूप से भारत से अधिक भिन्नता नहीं है। विवाह के रीति-रिवाज़ों में कुछ परिवर्तन आ गया है या यों कहें कि कुछ सरलीकरण हो गया है, परन्तु अपने ही ढंग का। फिर भी स्त्रियां उसी प्रकार के गीत गाती हैं। वर के लिए घोड़े के वजाय मोटर गाड़ी का प्रयोग सहूलियत को देखते हुए किया जाने लगा है। मंडप आदि उसी तरह सजाया जाता है। सामूहिक भोज का रिवाज भी उसी प्रकार चल रहा है। दहेज प्रथा विलकुल नहीं है। जाति नाम की कोई चीज नहीं, इसलिए अपनी ही जाति या संप्रदाय में विवाह करना ज़रूरी नहीं है। तीज-त्योहार भी उसी तरह मनाए जा रहे हैं। गिरजों में प्रवचन हिन्दी में भी होते हैं। कैथोलिक चर्च में दिवाली का प्रवचन दिये जलाकर होता है।

समय और स्थानीय मौसम को देखते हुए वेश-भूषा कुछ वदल गई है। पुरुष और लड़के-लड़कियां अंग्रेजी ड्रेस पहनते हैं, पर स्त्रियां अधिकतर साड़ी-व्लाउज ही पहनती हैं। पुरुषों में अधिकतर गांवों तथा छोटे नगरों में भी हाफपैंट ही पहनने का रिवाज बहुत है। खेतों में काम करने वाले किसान अधिकतर हाफपैंट ही पहनते हैं और धूप से बचने के लिए टोप भी लगाते हैं। पुरुषों में धोती पहनने का रिवाज खत्म हो गया है। नये ढंग का हाइनेक कुरते का रिवाज मनचले लोगों में जरूर चल पड़ा है।

खान-पान के मामले में भारतीय समाज में कोई परिवर्तन नहीं आया है। दाल-भात, रोटी-सब्जी और मांसाहारियों के लिए मांस, मछली, अंडे का प्रयोग होता है। भारतीय दालें और सब्जियां पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं। नवयुवकों में, विशेष रूप से शहरों में मांसाहार और मादक पेयों की ओर प्रवृत्ति दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। चाय और दूध का रिवाज कम हो रहा है।

तीसरी मुख्य जनधारा है यूरोपियन या अर्ध यूरोपियन लोगों की। 1870 के आसपास इनकी सख्या लगभग दो हज़ार थी और उसमें अगले दस-वीस सालों में भी कोई खास बढ़ोतरी नहीं हुई।

इन गोरे लोगों ने स्थानीय सामन्तों को फुसलाकर बड़ी-वड़ी ज़मीनें हथिया ली थीं। इनमें वड़े पैमाने पर गन्ने, नारियल और केले की खेती की जाने लगी थी। जब तक गिरमिट प्रथा रही, इनकी चांदी वनती रही। परन्तु उसके वाद हालत वदल गई। कई गोरे फीजी छोड़ गए। वड़े-वड़े फार्म छोटे-छोटे खेतों में विभाजित कर दिए गए। कुछ यूरोपियन लोगों ने नारियल के वागानों का धन्धा चालू रखा। परन्तु अधिकांश लोग व्यापार और उद्योग में तथा सरकारी नौकरी

भारी-भरकम
कछुआ उठाए
फीजी की एक स्त्री

में आ गए। आज भी बहुत-से यूरोपियन स्थानीय सरकार में उच्च पदों पर आसीन हैं। बहुत-से गोरे लोगों की तो यहां चार-पांच पीढ़ियां बीत गई हैं और वे यहां की जनधारा के अंग बन गए हैं। यहां तक कि आस-पास के नये आजादी प्राप्त देशों में भी फीजी के सरकारी कर्मचारी भरती किए गए हैं।

शुरू के दिनों में जो यूरोपियन लोग यहां आए थे, वे कुंवारे थे। स्त्रियां उनके साथ नहीं थीं। अतः यह स्वाभाविक था कि वे स्थानीय फीजियन या तोंगन या अन्य स्त्रियों से शादी करते। फलतः लेवूका के आसपास सर्वप्रथम इस संकर सृष्टि (पार्ट यूरोपियन) का विकास हुआ। 1882 तक इन अर्ध यूरोपियनों की संख्या आठ सौ से कम थी, परन्तु आज इनकी संख्या ग्यारह हज़ार से ऊपर मानी जाती है। इन वर्ण संकर लोगों में बहुत से युवक-युवतियां अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक होते हैं। आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड की बड़ी-बड़ी कम्पनियों में इनको अच्छे-अच्छे पदों पर स्थान मिल रहे हैं। स्थानीयकरण से इस वंश को बड़ा लाभ पहुंचा है।

यूरोपियन और अर्ध यूरोपियन लोगों के अलावा फीजी में रोतुमन, अन्य प्रशान्त द्वीपीय और चीनी लोग भी हैं। परन्तु इनकी संख्या बहुत अधिक नहीं है।

रोतुमा का द्वीप 1881 में फीजी द्वीपसमूह के ब्रिटिश उपनिवेश में शामिल किया गया था। रोतुमन लोग ज्यादातर रोतुमा में ही रहते हैं परन्तु उनमें से कुछ मनचले युवक फीजी के अन्य द्वीपों की चमक से खिचकर यहां आ गए हैं। ये स्वभाव और परम्परा से घुमक्कड़ होते हैं। रोतुमा वैसे फीजी में सबसे अलग टापू है और पौलीनेशियन लोग ही इसमें रहते हैं।

गिलवर्ट, एलिस, तोंगा, समोआ और अन्य कई आस-पास के द्वीपों के लोग भी फीजी में आकर बस गए हैं। इस समय इनकी संख्या दस हज़ार के आसपास है।

राम्बी दूसरा टापू है, जो वैनावास लोगों से बसा दिया गया है, जिन्हें अब भी ब्रिटिश फासफेट कमीशन से पोत मिलता है। इसी कारण ये लोग दूसरे फीजियन लोगों से साधन-सम्पन्न हैं।

1911 की जनगणना में चीनी लोगों का सर्वप्रथम उल्लेख किया गया था। उस समय उनकी संख्या 305 थी। इस समय इनकी संख्या लगभग छह हज़ार के आसपास है। दुकानदारी के धन्धे में ये बड़े कुशल हैं और सब्ज़ी और भाजी की खेती भी बहुत सुचारु रूप से करते हैं।

# भाषा और साहित्य

फीजी एक बहुभाषी देश है। यहां लगभग एक शताब्दी तक ब्रिटेन का आधिपत्य रहने के कारण अंग्रेज़ी को राजभाषा का गौरव प्राप्त हो गया है। परन्तु स्वतन्त्र फीजी के संविधान में अंग्रेज़ी के साथ-साथ हिन्दी (हिन्दुस्तानी) और फीजियन (काईवीती) भाषाओं को भी मान्यता प्राप्त है। अंग्रेज़ी संसद की राजभाषा है, परन्तु संसद के किसी भी सदन का सदस्य सदन में फीजियन या हिन्दी में बोल सकता है। परन्तु बोलते सभी अंग्रेज़ी में ही हैं। इन तीन प्रमुख भाषाओं के अलावा चीनी, रोतुमन भाषाओं के बोलने वाले लोग भी थोड़ी संख्या में यहां हैं।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, फीजी में लगभग पचास प्रतिशत लोग भारतीय मूल के हैं। वे भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों से आए थे। उस समय उनकी भाषा भी अलग-अलग थी। मुख्यतः ये लोग पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के क्षेत्रों से शर्तबन्द श्रमिकों के रूप में यहां लाए गए थे। दक्षिण भारत के अनेक प्रदेशों से भी लोग यहां लाये गए थे। इसी प्रकार पंजाब और गुजरात से भी यहां बड़ी संख्या में लोग आए थे। उस समय उन्हें विचारों के आदान-प्रदान के लिए एक सामान्य माध्यम की ज़रूरत महसूस हुई और स्वाभाविक रूप से एक ऐसी हिन्दुस्तानी का विकास हो गया जो पूर्वी हिन्दी के अधिक नज़दीक थी। पिछले अस्सी-पचासी वर्षों के दौरान इस हिन्दुस्तानी की एक सामान्य शैली विकसित हो गई, जिसे वहां के भारतवंशियों ने सामान्य रूप से अपना लिया। हालांकि कुछ पंजाबी परिवारों में जो अपेक्षाकृत बाद में यहां आये थे, लोग अब भी टूटी-फूटी पंजाबी बोलते हैं और इसी प्रकार तमिल तथा गुजराती परिवारों में भी तमिल तथा गुजराती भाषा बोली जाती है। परन्तु गिरमिट के ज़माने में आए लोग घरों में भी फीजियन हिन्दी ही बोलते हैं। अंग्रेज़ी भाषी लोगों के साथ रहने से इस हिन्दी का लहजा कुछ बदल गया है, परन्तु कोई भी हिन्दी भाषी भारतीय

इसे आसानी से समझ सकता है। यह बोलचाल की हिन्दी भारतवंशियों के सम्पर्क में आने वाले फीजियनों (काईवीतियों) द्वारा भी बोली और समझी जाती है। आप सब्ज़ी बाज़ार में जाइये। वहां सब्ज़ी बेचने वाला फीजियन आपसे इसी हिन्दी में बात करेगा। इसी प्रकार गांवों में जहां भारतवंशी परिवार काईवीतियों के साथ रहते हैं, काईवीती लोग हिन्दी और भारतवंशी लोग काईवीती (फीजियन) भाषा बोल और समझ सकते हैं। यहां तक कि अनेक काईवीती रामायण मंडलियों में हिस्सा लेते हैं। वे अच्छी खासी हिन्दी बोल लेते हैं और कुछ तो हिन्दी में भाषण देते समय बीच-बीच में रामायण की चौपाइयों के उद्धरण भी देते जाते हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद तो यह भी सुखद स्थिति पैदा हो गई है कि यहां के काईवीती लोक नेता अपने चुनाव-क्षेत्रों में हिन्दी भाषी मतदाताओं के सामने हिन्दी में भाषण देने का प्रयत्न करते हैं। इसी प्रकार चीनी उद्भव के दुकानदार भी काम-चलाऊ हिन्दी बोल और समझ लेते हैं।

पिछले दस वर्ष पहले तक यहां के अनेक स्कूलों में हिन्दी का पठन-पाठन नियमित रूप से होता था। सीनियर कैम्ब्रिज परीक्षा में हिन्दी भी एक प्रमुख विषय होती थी। परन्तु बीच में कुछ शिथिलता-सी आ गई और हिन्दी का पठन-पाठन बहुत ही गौण होने लगा। किन्तु स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद अब पुनः हिन्दी को नियमित रूप से पढ़ाए जाने की व्यवस्था की जा रही है। हिन्दी को मातृभाषा के रूप और द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ाए जाने के लिए दो अलग-अलग पाठ्यक्रम तैयार किए जा रहे हैं। आशा है शीघ्र ही अनिवार्य भाषा के रूप में हिन्दी का पठन-पाठन शुरू हो जाएगा और अन्ततोगत्वा छात्रों के लिए अंग्रेज़ी, हिन्दी और फीजियन तीनों भाषाओं की पढ़ाई की व्यवस्था हो जाएगी। जाने-अनजाने इस त्रिभाषा सूत्र का पालन आज भी हो रहा है। आज जनता के लिए प्रसारित की जाने वाली प्रेस-विज्ञप्तियां आमतौर पर तीनों भाषाओं में निकलती हैं। सार्वजनिक स्थानों पर सामान्य जानकारी के लिए तीनों भाषाओं का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार कहीं-कहीं सड़कों पर भी साइनबोर्ड तीन भाषाओं में मिलते हैं। जिन सरकारी कार्यालयों का सीधे आम जनता से सम्बन्ध होता है, वहां कहीं-कहीं छोटा-सा हिन्दी अनुभाग भी होता है, जहां अंग्रेज़ी से हिन्दी और हिन्दी से अंग्रेज़ी में अनुवाद का कार्य होता है। ऐसे सरकारी कार्यालयों में हिन्दी के टाइपराइटरों का प्रयोग भी बढ़ता जा रहा है

हालांकि बोलचाल की फीजियन हिन्दी का रूप कुछ विकृत-सा है, वह आधुनिक व्याकरण के नियमों के अनुसार नहीं बोली जाती, परन्तु यहां भी औपचारिक प्रयोजनों के लिए जिस हिन्दी का प्रयोग किया जाता है, वह मानक हिन्दी से बहुत भिन्न नहीं है। भारत के साथ यहां के भारतवंशियों का सम्पर्क बराबर बना हुआ है। भारत के समाचारपत्र, पत्रिकाएं और पुस्तकें तथा हिन्दी फिल्में यहां बराबर आती रहती हैं। इसी प्रकार भारत से सांस्कृतिक और धार्मिक प्रचारक-प्रसारक भी यहां आते रहते हैं। इसलिए यहां के भारतवंशी हिन्दी के मानक रूप से भली-भांति परिचित हैं और उसे अपनाने के लिए उत्सुक भी हैं। फीजी रेडियो और यहां की पत्र-पत्रिकाएं हिन्दी मानक रूप अपनाने और प्रचारित करने के लिए प्रयत्नशील हैं। फीजी रेडियो से सप्ताह में लगभग पचहत्तर घंटे का हिन्दी कार्यक्रम प्रसारित होता है। आप जब भी रेडियो चालू करेंगे, आपको ठीक वैसे ही प्रोग्राम, वे ही भजन, वे ही गज़लें और फिल्मी गाने सुनने को मिलेंगे जैसे कि आकाशवाणी से प्रसारित होते हैं। फीजी रेडियो की हिन्दी ठीक वैसी ही है जैसी कि आकाशवाणी की हिन्दी। कारण यह है कि आकाशवाणी से इनका निकट का सम्बन्ध है और अनेक तैयार कार्यक्रम उन्हें आकाशवाणी से भी मिल जाते हैं, यद्यपि हिन्दी की खबरें बी० बी० सी० से प्रसारित की जाती हैं। फीजी में हिन्दी की पांच साप्ताहिक पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं। उनके नाम हैं: 'शान्तिदूत', 'फीजी संदेश', 'फीजी समाचार', 'जागृति' और 'जय फीजी'। इसके अलावा 'किसान मित्र' नामक पत्रिका भी प्रकाशित होती थी, जो कुछ समय से बन्द है। साधनों को देखते हुए इन साप्ताहिकों का स्तर काफी अच्छा है। फीजी में हिन्दी की लोकप्रियता का दूसरा कारण है, वहां हिन्दी की फिल्मों की मांग और उनका प्रदर्शन। उन्हें सभी वर्गों के लोग, चाहे उनकी मातृभाषा कोई भी हो, बड़े चाव से देखते हैं और उनके गाने गुनगुनाते रहते हैं।

फीजी के गन्ने के खेतों में काम करने के लिए जो भारतवंशी लाए गए थे, वे कृषक वर्ग के हृष्टपुष्ट जवान थे और उनसे अपेक्षा की जाती थी कि वे दिन-भर शरीर-तोड़ मेहनत करें और रात को अपनी कुली लेनों में थके-मांदे पड़कर सो रहें। अधिकतर ऐसा ही होता रहा परन्तु उन किसान-मजदूरों में भी कुछ ऐसे लोग थे, जिनकी सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक रुचि बहुत दिनों तक

दवी नहीं रह सकी । समय ने करवट वदली और कुछ सांस्कृतिक कार्यक्रम चालू हो गए । सन्ध्या के समय रामायण मण्डलियां जुड़ने लगीं । भजन-कीर्तन होने लगे कथा-भण्डारे चालू हो गए । नाटक और ख्याल होने लगे । रामलीला और रास-लीला खेली जाने लगीं । पढ़ने की प्रवृत्ति भी फिर से जागृति हुई । परन्तु पुस्तकें कहां से आएं ? पं० तोताराम सनाढ्य ने अपने 'फीजी में घासलेटी साहित्य का दुष्परिणाम नामक निबन्ध में, जो 'विशाल भारत' के जुलाई 1929 में अंक में प्रकाशित हुआ था, लिखा है, "सन् 1894 में फीजी द्वीप में हिन्दी के सत्साहित्य की वहुत ही कमी थी । इस सम्वन्ध में सनातन धर्म की पुस्तकों का प्रचार और प्रसार श्रीधर शर्मा ने जीवनपर्यन्त तक किया और उसकी अंत्येष्टि भी सनातनी रस्मोरिवाज से की गई । यह 'सुखसागर' की एक प्रति मकदूव वक्स के पास कोरोदिरी कोठी में थी और वह दस रुपये जमानत देकर ढाई रुपये रोज़ के किराये पर मिलती थी । सत्यनारायण की कथा की एक प्रति पंडित लालताप्रसाद के पास थी । तुलसीकृत रामायण की कुल चार प्रतियां थीं । इस प्रकार रेवा ज़िले में कुल 6 कितावें थीं ।" इससे अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि उस समय पुस्तक पढ़ने के शौकीन लोगों की हालत कैसी रही होगी ।

सत्साहित्य के अभाव में यह स्वाभाविक था कि पाठक अपनी प्यास को जो कुछ हाथ पड़ता उसी पाठ्य सामग्री से ही बुझाते । उसकी भी उस समय कमी ही थी । परन्तु कुछ लालची अंग्रेज़ दूकानदार ऐसे घटिया साहित्य की पुस्तकें भारत से मंगाकर भारी मुनाफा कमाते थे । भोले-भाले मज़दूर इन कितावों को वड़ी दिलचस्पी से पढ़ते और सुना करते थे और कुछ मनचले युवक उनके अनुसार प्रेमलीला करने की कोशिश में सज़ा भी भुगतते थे । उन दिनों की कितावों में सवसे लोकप्रिय किताव थी 'सारंगा सदावृज' । 'इन्द्रसभा', 'किस्सा तोता-मैना' आदि का भी प्रचार था । पंडित तोताराम ने अपने उक्त लेख में जिखा था कि वा ज़िले में 'सारंगा सदावृज' की नौ प्रतियां थीं, 'इन्द्रसभा का भी काफी प्रचार था । वाकी कुली लेन में या खेतों पर आप कहीं भी जाइए 'सारंगा सदावृज' का यह दोहा सुनने को मिलता था :

पैनों ले ले हँसिया, और पूरा काट पचास जी ।
गैल में छाइले झोंपड़ा, प्यारे मां, पुजाऊ तेरी आस जी ।।

और कोई-कोई यह भी गाता सुनाई देता था :

अरे लाल देव ये तू वक रहा क्या ?

मेरे परिस्तां में काम इन्सान का क्या ।।

इस कहानी ने न जाने कितने मनचले युवकों को कोड़े लगवाए, जेल की हवा खिलाई। इससे न जाने कितने लोगों की वसी-वसाई गृहस्थी वरवाद हो गई, घरों में कलह शुरू हो गई और ज़िन्दगी दूभर हो गई।

परन्तु सन्तोष की वात तो यह है कि यह घासलेटी साहित्य बहुत दिनों तक जनमानस तक हावी नहीं रह सका। वीसवीं सदी के आरम्भ होते-होते सांस्कृतिक पुनर्जागरण का श्रीगणेश हो गया। सनातन धर्म सभा, आर्य समाज आदि अनेक सामाजिक धार्मिक संस्थाओं ने भारतवंशी समाज की डोलती हुई नैया की पत-वार संभाल ली। भारतीय संस्थाएं स्थापित होने लगीं। पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित होने लगीं और सुरुचिपूर्ण साहित्य का पठन-पाठन शुरू हो गया और गिरमिट के ज़माने के वाद तो यहां भी भारत जैसी सामान्य स्थिति पैदा हो गई। यहां के स्कूलों में हिन्दी का पठन पाठन प्रारम्भ हो गया। हिन्दी का कुछ साहित्य भी लिखा जाने लगा। परन्तु अधिकांश पुस्तकें धार्मिक या सांस्कृतिक विषयों पर ही लिखी जाती थीं। कुछ सामाजिक पुस्तकें जैसे 'किसान संघ का इतिहास' भी लिखी गई। परन्तु प्रकाशन की सुविधा न होने के कारण लेखकों को अधिक प्रोत्साहन नहीं मिल सका।

किन्तु जब भारत स्वतन्त्र हुआ और हिन्दी को भारत की राजभाषा का गौरव प्राप्त हुआ तो फीजी में भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार को वल मिला। भारत से हिन्दी की नई-नई पुस्तकें मंगाई जाने लगीं। सूवा स्थित भारतीय हाई कमी-शन ने भी इस मांग को पूरा करने में अपना सहयोग दिया।

हिन्दी के प्रचार और उसकी उन्नति के लिए कई संस्थाओं की स्थापना हुई। मैंने भारत से पढ़कर आये विवेकानन्द जी के पीछे पड़कर, जो उस समय टीचर्स ट्रेनिंग कालिज में पढ़ाते थे, उन्हें एक हिन्दी साहित्य की संस्था स्थापित करने पर राज़ी किया और महीनों इसकी चर्चा में ही लग गए। यहां फीजी हिन्दी महापरिषद् का उल्लेख देना समाचीन होगा। यह एक स्वैच्छिक संस्था है जो भारतीय मूल के उत्साही युवकों द्वारा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए स्थापित

की गई है। इसका मुख्य कार्यालय बा नगर में है। फीजी के अन्य नगरों में भी इसकी शाखाएं खुल रही हैं।

महापरिषद् हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए अनेक योजनाएं और कार्यक्रम संचालित करती है। उसके पास हिन्दी पुस्तकों का एक अच्छा पुस्तकालय और वाचनालय भी है। परिषद् बड़े पैमाने पर हिन्दी के पठन-पाठन और प्रकाशन के कार्यक्रम को भी हाथ में लेने का विचार कर रही है।

यह प्रसन्नता की बात है कि फीजी में हिन्दी का कुछ ललित साहित्य भी तैयार हो रहा है। पुरानी पीढ़ी के लोग अधिकतर धार्मिक और सांस्कृतिक विषयों पर लिखा करते थे, परन्तु नई पीढ़ी के साहित्यकार उपन्यास, कहानी, कविताएं और अन्य सभी प्रकार की विधाओं में साहित्य का सृजन कर रहे हैं। सभी साप्ताहिक पत्रों में लगभग हर अंक में कहानी, एक कविता और कुछ चुटकुले आदि भी छापे जाते हैं। सभी पत्र अपना सुन्दर दीपावली अंक निकालते हैं। उनमें दीपावली पर अनेक कविताएं, लेख और सन्देश छपते हैं। इसी प्रकार होली आदि अन्य पर्वों पर भी विशेषांक, विशेष परिशिष्ट निकालते हैं जिनमें पठनीय सामग्री होती है। इसी प्रकार रेडियो फीजी में भी हिन्दी रूपक वार्ताएं और कविता तथा कहानियां प्रसारित होती रहती हैं। हिन्दी के व्यावसायिक प्रकाशन यहां नहीं हैं, इसलिए बहुत-सा साहित्य पाण्डुलिपियों के रूप में लेखकों के पास ही सुरक्षित रखा है। कुछ पुस्तकें भारत से प्रकाशित कराई गई हैं, जिनमें श्री विवेकानन्द शर्मा की पुस्तक 'प्रशांत के द्वीप' उल्लेखनीय है।

हिन्दी के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा देने के लिए हिन्दी पत्रकार संघ नामक एक संस्था चल रही है। इसके मंच से नवोदित लेखकों और कवियों की रचनाओं को प्रकाश में लाया जा रहा है। हिन्दी रंगमंच को प्रोत्साहन देने के लिए 'रंगमंच' नामक एक संस्था की स्थापना हुई है।

संख्या की दृष्टि से हिन्दी के बाद फीजियन भाषा का नम्बर आता है। फीजियन (काईवीती) भाषा रोमन लिपि में लिखी जाती है। इसको सर्वप्रथम ईसाई धर्म प्रचारकों ने लिपिबद्ध किया था। फीजियन का ध्वनि समुदाय भारतीय भाषाओं से भिन्न नहीं है और वह देवनागरी में भी आसानी से लिखी जा सकती है। फीजियन भाषा के भी दो बड़े वर्ग हैं। नन्द्रोंगा क्षेत्र में बोली जाने
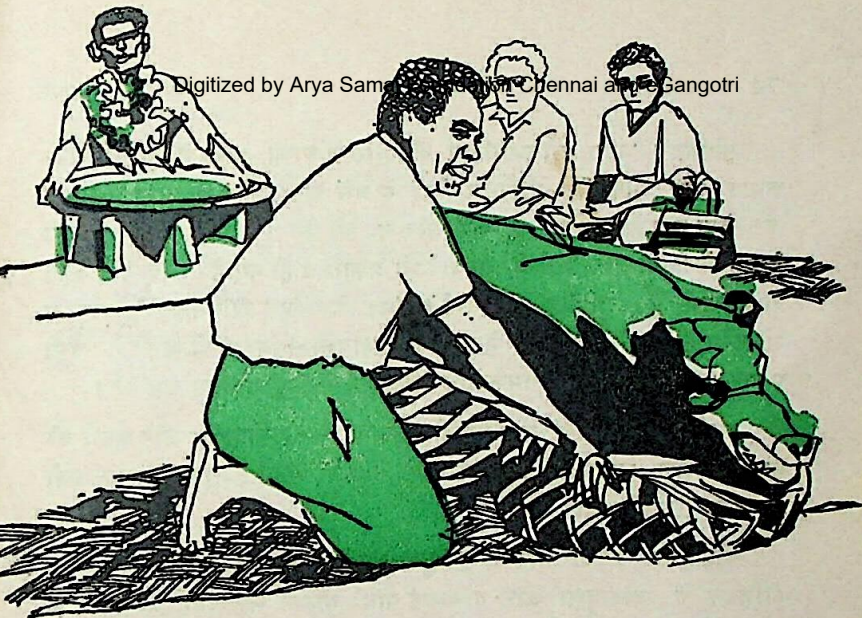
**फीजी के अग्रणी नेताओं के सम्मान में पका हुआ सुअर भेंट किया जाता है।**

वाली फीजियन बाकी फीजी में बोली जाने वाली फीजियन से कुछ भिन्न है।

शिक्षा संस्थाओं में फीजियन भाषा का विधिवत् पठन-पाठन बहुत कम है। कुछ ही संस्थाओं में इसकी व्यवस्था है। अभी तक इसके प्रचार-प्रसार की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। सरकारी कार्यालयों में भी इसका प्रवेश न के बराबर ही है। प्रसन्नता की बात है कि फीजियन का पाठ्यक्रम भी तैयार हो रहा है और स्कूलों में उसके पठन-पाठन की व्यवस्था शीघ्र ही हो जाएगी।

यूरोपियन लोगों के आगमन के बाद ईसाई पादरियों ने फीजियन में काफी धार्मिक प्रचार-साहित्य प्रकाशित किया था। किन्तु फीजियन लोगों में शिक्षा का प्रसार अंग्रेज़ी के माध्यम से हुआ था, इसलिए फीजियन भाषा में साहित्य की रचना नहीं हो सकी। अब कुछ लोग फीजियन में भी कुछ साहित्य रचना करने लगे हैं। इस समय फीजियन भाषा के दो साप्ताहिक 'नई ललकाई' और 'वोलांगौना' तथा एक मासिक 'ना माता' निकलते हैं।

फीजियन भाषा लोक-साहित्य की दृष्टि से काफी समृद्ध है। अनेक लोक-कथाएं और लोक-गीत पीढ़ी-दर-पीढ़ी से चले आ रहे हैं। अब उन्हें लिपिवद्ध कर दिया गया है। उन्हें नये स्वर और लय भी देने का प्रयास किया जा रहा है। उनके हिन्दी और अंग्रेज़ी अनुवाद भी प्रकाशित हो गए हैं। लोक-गीत वहुत ही भावपूर्ण हैं। सुप्रसिद्ध 'ईसा लेई' नामक गीत बहुत ही मनोहर हैं, भावों से ओतप्रोत हैं। इनमें आगन्तुक मेहमान को भावभीनी विदाई दी जाती है। इसी प्रकार 'सालू सालू कोका' नामक गीत मेहमान के स्वागत में गाया जाता है।

काईवीती लोकगीतों में दिल की तड़प, प्यार की कोमलता और भावों की मधुरता बहुत छलकती है। 'ईसा माई दियां', 'नोंगो-ई-ताऊ-लोमानी' इसी प्रकार के मीठे और प्यारे लोकगीत हैं।

चांद और उसकी चांदनी युग-युगान्तर से कवियों के प्रेरणास्रोत रहे हैं। फीजियन के 'आंदीवूला' और दारूमाई गांदे' नामक लोकगीत इसी प्रेरणा के फल हैं। लेकिन चांद को देखकर लिखा गया 'वूला ईसा वूला' गीत मधुरता की दृष्टि से अतुलनीय हैं। 'ना माता नी दीवा' नामक लोकगीत उपदेशात्मक है, जिसमें यह शिक्षा दी गई है कि यह जीवन बहुमूल्य हीरा है, इसे बेकार नहीं जाने देना चाहिए।

अंग्रेज़ी तो फीजी की राजभाषा है ही। यह शिक्षा का माध्यम भी है। इसका पठन-पाठन यहां के स्कूलों में बाकायदा होता है। सारा सरकारी काम, सारा व्यापारिक कार्य-व्यवहार इसी के माध्यम से होता है।

फीजी में केवल एक दैनिक पत्र है 'फीजी टाइम्स,' जो अंग्रेज़ी में निकलता है। 'फीजी टाइम्स' 1869 से प्रकाशित होने लगा था। इसे विश्व में प्रतिदिन सबसे पहले प्रकाशित होने का गौरव प्राप्त है, क्योंकि यह सूवा नगर में, जहां से ठीक पश्चिम की ओर अंतर्राष्ट्रीय तिथि-रेखा गुज़रती है, अर्द्धरात्रि के समय प्रकाशित होता है। 'पैसिफ़िक रिव्यू' नामक एक साप्ताहिक पत्र जो कि नेशनल फेडरेशन पार्टी का मुखपत्र है, अंग्रेज़ी में निकलता है। वैसे देखा जाय तो फीजी से अंग्रेज़ी का कोई खास साहित्य प्रकाशित नहीं हो सका है। अब कुछ लोग मौलिक रचनाएं लिख रहे हैं। पिछले दो-तीन साल में 'फीजी फीजी', 'फीजी माई लव' आदि

अनेक रंगीन पुस्तकें फीजी के ऊपर प्रकाशित हुई हैं।

फीजी सरकार ने एक सांस्कृतिक केंद्र खोलने का निर्णय किया है, जिसमें भारतीय और फीजियन संस्कृतियों की उन्नति के लिए कार्य किया जाएगा। उसके द्वारा फीजियन और हिन्दुस्तानी (हिन्दी) भाषा और साहित्य का भी विकास किया जायगा।

9

# भारत और फीजी

फीजी के साथ भारत के संपर्क का श्रीगणेश उस समय हुआ था, जब 5 मई 1879 को 481 भारतीय नर-नारियों से भरा हुआ पानी का जहाज लेवनीदास फीजी के लेवूका बंदरगाह पर किनारे लगा। समय के साथ-साथ यह संपर्क दृढ़तर होता गया। यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि गिरमिट के जमाने में यानी 1879 से 1916 तक भारत से शर्तबंदी मज़दूरों का आना बराबर जारी रहा और गिरमिट प्रथा समाप्त होने तक फीजी में जितने भारतीय आए थे, उनमें से लगभग चालीस हज़ार व्यक्ति यहीं बस गए और उन्होंने फीजी को ही अपना देश मान लिया। उनकी आकर्षक शक्ति से खिचकर अनेक भारतीय साधु-संन्यासी, धर्म-प्रचारक, सैलानी, नेता और व्यापारी लोग फीजी आते रहते थे। उस समय भारत से अनेक विभूतियां यहां आईं और कुछ दिनों रहकर वापस चली गईं। परन्तु उनमें सबसे उल्लेखनीय थे, दीनबन्धु रेवरेंड सी० एफ० एण्ड्रूज तथा डॉ० मणिलाल गांधी। उन्होंने गिरमिट के कष्टों से पीड़ित जनता की बहुत सेवा की। उन्हीं दिनों आर्य समाज, सनातन धर्म और अहमदिया संप्रदाय के कई धर्मोपदेशक यहां आए। उन्हीं दिनों यहां गुरुद्वारों की स्थापना हुई और सिखग्रंथी भारत से आए। इसी प्रकार रामकृष्ण मिशन, डिवाइन लाइफ सोसाइटी आदि अनेक आध्यात्मिक संस्थाओं के स्वामी भी यहां आते रहे। इसी प्रकार फीजी से भी अनेक भारतवंशी अध्ययन, पर्यटन आदि के लिए भारत जाते रहे। अतः भौगोलिक दूरी होते हुए भी भारत और फीजी के बीच बराबर सम्पर्क बना रहा।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद स्वतंत्र भारत के प्रतिनिधि विभिन्न राष्ट्रों में भेजे जाने लगे। 18 अगस्त, 1948 को फीजी की राजधानी सूवा में भारत का कमीशन खोला गया। प्रथम भारतीय कमिश्नर श्री एम० ए० वाइज़ पहली अक्तूबर, 1948 को हवाई जहाज़ से फीजी की रमणीक भूमि पर उतरे। नान्दी हवाई अड्डे
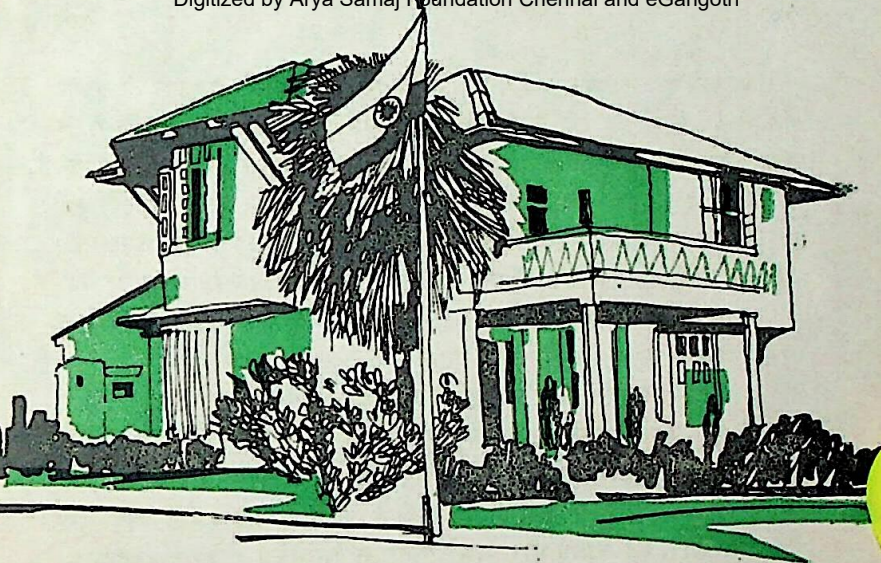
सूवा में इंडिया हाउस

पर स्वागतकर्ताओं की भीड़ जमा थी। लोग दूर-दूर के गांवों और खेत-खलिहानों से स्वतन्त्र भारत के पहले प्रतिनिधि की अगवानी करने के लिए जमा थे। स्वागत-समारोहों का क्रम कई महीनों तक चला।

भारतीय कमीशन की स्थापना के बाद दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक और व्यापारिक आदान-प्रदान और आसानी से बढ़ने लगा। छात्र अधिकाधिक संख्या में अध्ययन के लिए भारत जाने लगे। इसी प्रकार भारत से भी कई सांस्कृतिक दल और अन्य प्रतिनिधि मंडल सद्भावना-यात्रा पर फीजी आने लगे। छात्रों को भारत सरकार की ओर से छात्रवृत्तियां भी दी जाने लगीं। सामान्य और व्यावसायिक विषयों, जैसे डाक्टरी, इंजीनियरी आदि के अलावा कुछ छात्रवृत्तियां हिन्दी पढ़ने के लिए भी दी जाती हैं। फीजी के तमिल और तेलुगु भाषी छात्रों के लिए भारत में पढ़ने के लिए तमिलनाडु और आन्ध्र प्रदेश की सरकारों की ओर से छात्रवृत्तियां दी जाती हैं।

स्वतन्त्र रूप से अपने खर्चे पर भारत में पढ़ने वाले फीजी के छात्रों की संख्या भी प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है। भारतीय हाई कमीशन फीजी के छात्रों को भारत में अध्ययन करने के संबंध में मार्गदर्शन और सहायता देता है। फीजी से भारत-भ्रमण पर आने वाले सैलानियों की संख्या भी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसी प्रकार भारत से फीजी जाने वालों की संख्या में भी दिनोंदिन बढ़ोतरी हो रही है। फीजी का एक प्रतिनिधिमंडल रातू मारा के साथ, जिसमें अब्दुल लतीफ और मोती टीकाराम शामिल थे, सन् 1961 में भारत गए। उसके बाद भी रातू मारा दो बार भारत की यात्रा कर गए हैं।

फीजी और भारत के सौहार्द्रपूर्ण संबंधों में उस समय एक नये अध्याय का प्रारम्भ हुआ, जब फीजी देश 8 अक्तूबर 1970 को आजाद हुआ। इस अवसर पर भारत के राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरि ने फीजी के गवर्नर जनरल को और भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने फीजी के प्रधानमंत्री रातू सर कामिसेसे मारा को बधाई और शुभकामना सन्देश भेजे। फीजी के स्वतंत्रता-समारोहों में भाग लेने के लिए लोकसभा के अध्यक्ष श्री गुरुदयाल सिंह ढिल्लों की अध्यक्षता में एक प्रतिनिधि मंडल आया।

दोनों देशों का मैत्री-बंधन उस समय और भी मज़बूत हो गया, जब भारत ने 11 अक्तूबर, 1970 को संयुक्त राष्ट्र संघ में फीजी को प्रवेश देने का प्रस्ताव संयुक्त रूप से पेश किया और उसके फलस्वरूप विश्व के मानचित्र पर फीजी का एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में उदय हुआ। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद फीजी से भारत-भ्रमण के लिए जाने वाले शिष्टमंडलों में बहुत वृद्धि हुई। फीजी के प्रधान-मंत्री रातू सर कामिसेसे मारा ने 29 जनवरी से 5 फरवरी, 1971 तक भारत की राजकीय यात्रा की। पिछले वर्षों में दोनों देशों के मध्य पारस्परिक विश्वास और मित्रता की जो भावना पनपती आ रही थी, उसमें इस सद्भावना यात्रा से और भी दृढ़ता आ गई। अगले वर्ष 1972 में तो फीजी के अनेक शिष्टमंडल भारत आए। फीजी ने दिल्ली में 'एशिया 72' मेले में भाग लिया।

अपने यहां हुई प्रगति से फीजी को अवगत कराने के लिए भारत की ओर से फीजी में अनेक प्रदर्शनियाँ आयोजित की गईं। इन प्रदर्शनियों से दोनों देशों के बीच व्यावसायिक सम्बन्धों को भी बढ़ावा मिला। भारत से कई सांस्कृतिक दल जैसे भांगड़ा नर्तक, सिनेमा गायक, कव्वाल आदि फीजी में आते रहते हैं

फीजी के एक समारोह में वहां के गवर्नर जनरल रातू जार्ज दकम्बाऊ (दायें से दूसरे) और उनकी पत्नी के साथ भारत के राजदूत तथा इस पुस्तक के लेखक (दायें से प्रथम) और उनकी पत्नी।

और उन्हें यहां काफी लोकप्रियता और सफलता प्राप्त होती है। भारतीय तकनीकी और आर्थिक सहयोग-कार्यक्रम के अन्तर्गत भारत फीजी के लिए अनेक विशेषज्ञों की सेवा उपलब्ध करा रहा है। विशेषज्ञों के अलावा अनेक भारतीय डाक्टर और अध्यापक फीजी में अपनी सेवाएं प्रदान कर रहे हैं। फीजी सरकार के पदाधिकारियों को भारत में सेवाकालीन प्रशिक्षण की सुविधाएं भी प्रदान की जाती हैं। फीजी सरकार के अनेक पदाधिकारी अब तक इस सुविधा का लाभ उठा चुके हैं।

फीजी के बहुजातीय समाज की सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए 14 अगस्त, 1972 को सूवा में भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र की स्थापना की गई। यह केन्द्र दो मित्र देशों के प्रधानमंत्रियों के मस्तिष्क के सामंजस्य का फल है। इसकी कल्पना 5 फरवरी, 1971 की संयुक्त विज्ञप्ति में की गई थी, जो भारत और फीजी के प्रधानमंत्रियों द्वारा दिल्ली में जारी की गई थी। इस केन्द्र का उद्घाटन

फीजी के प्रधानमंत्री रातू सर कामिसेसे मारा के कर कमलों द्वारा किया गया। इसकी स्थापना से फीजी के सांस्कृतिक जीवन में एक आंदोलन-सा आ गया है। सभी जातियों और वर्गों के छात्र विभिन्न प्रकार के भारतीय नृत्य, गेय तथा वाद्य संगीत की शिक्षा ले रहे हैं। यहां पर भारत के चुने हुए कलाकार नृत्य और संगीत की शिक्षा देते हैं। केन्द्र में एक अच्छा पुस्तकालय और वाचनालय भी है। यहां भारत के विषय में सभी प्रकार की जानकारी मिल सकती है। केन्द्र की ओर से फीजी के अनेक नगरों में और सुदूरवर्ती द्वीपों में अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं।

भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् का एक अधीनस्थ कार्यालय है और यह भारतीय उच्चायोग के सांस्कृतिक स्कंध (विंग) के रूप में, एक निदेशक के अधीन काम करता है।

भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र के अलावा, फीजी में और कई भारतीय संस्थाएं हैं, जो इस नवोदित देश के आर्थिक विकास में सहयोग प्रदान कर रही हैं। यहां एयर इण्डिया, बैंक आफ बड़ौदा, भारतीय जीवन बीमा निगम और न्यू इण्डिया एंश्योरेंस कम्पनी का उल्लेख कर देना समीचीन होगा।

10

# आधुनिक फीजी के निर्माता

पिछले एक अध्याय में फीजी के महासामन्त सेरू दकम्बाऊ (Cakobau) का उल्लेख किया गया है, जिन्होंने अपने साथी सामन्तों के साथ मिलकर फीजी को 10 अक्तूबर, 1874 के दिन ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया के हाथों में सौंप दिया था। इन्हीं सेरू दकम्बाऊ के प्रपौत्र थे रातू सर एडवर्ड दकम्बाऊ, जिन्होंने वर्तमान शताब्दी के पिछले दो दशकों में फीजी के बहुजातीय समाज में बड़ी लोकप्रियता प्राप्त की। 10 अक्तूबर, 1971 को जब ब्रिटेन की भूतपूर्व महारानी विक्टोरिया की प्रपौत्री महारानी एलिज़ाबेथ ने फीजी देश की अमानत को फीजी के लोगों को सुरक्षित रूप में वापस लौटाया तो रातू सर एडवर्ड दकम्बाऊ भी उन लोक-नेताओं में से थे, जिन्होंने इसे जनता के प्रतिनिधि के रूप में उसे पुनः स्वीकार किया। रातू सर एडवर्ड दकम्बाऊ स्वतन्त्र फीजी के उपप्रधान मन्त्री बने और अपना पूर्ण सहयोग, अगाध श्रद्धा और समादर अपने पुराने शिष्य और जूनियर अफसर रातू सर कामिसेसे मारा को प्रधानमन्त्री पद पर सर्वसम्मति से आसीन कराने में लगा दिया।

रातू सर एडवर्ड ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा क्वीन विक्टोरिया स्कूल, फीजी में और उच्च शिक्षा वांगानुई कालेज और आकलैंड टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, न्यूज़ी-लैंड में प्राप्त की। 1931 में आप सरकारी सेवा में शामिल हुए तथा एक स्कूल अध्यापक के रूप में काम शुरू किया। बाद में उनकी नियुक्ति विभिन्न प्रशास-कीय पदों पर हुई। 1937 में जार्ज षष्ठ के राजतिलक समारोह में वे फीजी के प्रतिनिधि के रूप में शामिल हुए। द्वितीय महायुद्ध के दौरान 1940 से उन्होंने फीजी की सेना में मेजर के पद को बड़ी योग्यता से संभाला और उन्हें उनकी वीरता के लिए मिलिट्री क्रास प्रदान किया। 1951 से 1953 तक उन्होंने मलाया में फीजी की बटालियन का नेतृत्व किया। वे 25 जून, 1973 को अपनी मृत्यु-

पर्यन्त फीजी के द्वितीय बटालियन के आनरेरी कर्नल भी रहे।

रातू एडवर्ड दकम्वाऊ अपनी मृत्युपर्यन्त फीजी की संसद के सदस्य थे, जिनमें वे 1942 में सदस्य के रूप में शामिल हुए थे। वे एग्ज़ीक्यूटिव कौंसिल के भी सदस्य थे, जिसमें वे प्रथम बार 1950 में नियुक्त हुए थे। उन्हें ब्रिटेन की महारानी से नाइटहुड की उपाधि मिली थी।

फीजी में गिरमिट प्रथा और उसके उन्मूलन का जहां-कहीं भी जिक्र होगा, वहां पं० तोताराम सनाढ्य का नाम अवश्य लिया जायेगा। पंडितजी उन व्यक्तियों में से थे, जो शर्तबन्द कुली प्रथा के अन्तर्गत पहले दौर में फीजी लाए गए थे। उन्होंने कुलियों की तकलीफों और यातनाओं को खुद देखा और झेला था और वे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने इस प्रथा के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द की थी। उन्होंने इस प्रथा के विरुद्ध जनमत जागृत किया और तब तक आन्दोलन छेड़े रखा, जब तक कि 1916 में उसका उच्छेद नहीं हो गया।

पं० तोतारामजी का जन्म 1876 में हिरनगो (फिरोजाबाद), भारत, में एक सनाढ्य कुल में हुआ था। बचपन में ही उनके सिर पर से पिता का साया उठ गया था। गरीबी के दुखों से पीड़ित होकर वे 1893 में नौकरी की तलाश में घर से निकल पड़े और प्रयाग पहुंच गए। यहीं पर उनकी एक बेनी बाबू नामक अरकाटी से भेंट हो गई, जिसने उन्हें बहकाकर फीजी भिजवा दिया। वहां उन्हें नौसूरी की कोठी में भेज दिया गया। उन्होंने गिरमिट के अन्तर्गत कठोर यातनाएं सहीं। निर्दय ओवरसियरों के दुर्व्यवहार को देखकर उनकी आत्मा तड़प उठी। यह सब अत्याचार और अनाचार देखकर उन्होंने कुली प्रथा का उन्मूलन करने का प्रण ले लिया। वे इक्कीस वर्ष तक फीजी में रहे और उसके बाद भारत लौट आए। उन्होंने अपनी पुस्तक 'फीजी द्वीप में मेरे 21 वर्ष' में कुली-जीवन की यातनाओं का बड़ा मार्मिक वर्णन किया है।

इस पुस्तक के प्रकाशन के बाद भारत में कुली-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा हो गया। पं० गोपालकृष्ण गोखले, महात्मा गांधी, मदनमोहन मालवीय, तिलक आदि लोक-नेताओं का ध्यान इस ओर गया और अन्ततः यह प्रथा बन्द हो गई। स्वयं पंडित तोतारामजी ने भी भारत पहुंचते ही इसके विरुद्ध ज़ोर-शोर से प्रचार शुरू कर दिया। सर्वप्रथम 28 अप्रैल, 1914 को वे कलकत्ता पहुंचे। वहां एक मास तक ठहर कर कुली-प्रथा के विरुद्ध ज़ोरदार प्रचार किया। अनेक

फीजी की गिरमिट प्रथा का उन्मूलन कराने में अग्रणी पं० तोताराम

मारवाड़ी व्यापारियों ने उनके कार्यों में सहायता दी। उसके बाद वे अपने गांव हिरनगो पहुंचे। इसी समय फिरोज़ाबाद में आपकी मुलाकात सुप्रसिद्ध प्रवासी भारतीय समस्या-विशेषज्ञ पं० बनारसीदास चतुर्वेदी से हुई। तोतारामजी ने चतुर्वेदी जी को फीजी के प्रवासी भारतीयों की दयनीय दशा से अवगत कराया और चतुर्वेदीजी ने ही तोतारामजी की पुस्तक प्रकाशित करवाई।

पं० तोताराम जी के देश-प्रेम, भक्त हृदय और उनकी प्रवासी भारतीयों की सेवा को देखकर महात्मा गांधी ने उनसे साबरमती आश्रम में रहने का आग्रह किया। वहां रहकर वे जीवनपर्यन्त महात्मा जी के आदेशानुसार भारतीयों के कल्याण के लिए कार्य करते रहे। वहीं 1947 में उनका निधन हो गया। स्वयं महात्माजी ने तोतारामजी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखा था—"वे

साबरमती आश्रम के भूषण थे। विद्वान् तो नहीं, पर ज्ञानी थे। भजनों के भण्डार थे, फिर भी गायनाचार्य न थे। अपने एकतारे और भजनों से आश्रमवासियों को मुग्ध कर देते थे···तोतारामजी को धरती प्यारी थी। खेती उनका प्राण थी। आश्रम में वे बरसों पहले आए और कभी उसे नहीं छोड़ा।"

गिरमिट प्रथा के उन्मूलन के साथ जुड़े कुछ और नाम भी हैं, जिनका सम्बन्ध फीजी से बहुत कुछ जुड़ा हुआ है। रेवरेंड चार्ल्स फ्रियर एंड्रूज, जिन्हें बाद में उनकी भलाई के कार्यों के कारण दीनबन्धु एंड्रूज कहा जाने लगा था, उनमें से एक हैं।

रेव० एंड्रूज एक विशुद्ध अंग्रेज पादरी थे। उनके जीवन का महत्त्वपूर्ण भाग 1904 में शुरू हुआ, जब वे दिल्ली के सेंट स्टीफेन कालेज में अंग्रेजी के प्राध्यापक बनकर आए। फीजी के प्रवासी भारतीयों की ओर रेव० एंड्रूज का ध्यान रेव० जे० डब्ल्यू बर्टन नामक आस्ट्रेलियाई मैथोडिस्ट पादरी की पुस्तक 'दी फीजी अप टुडे' को पढ़ने के बाद गया। इस पुस्तक में भारतीय कुलियों की दयनीय दशा का रोमांचकारी विवरण था। इसे पढ़कर एंड्रूज इतने द्रवित हुए कि उन्होंने तुरन्त फीजी जाने का फैसला कर लिया। उन्होंने कलकत्ते की एंटी इंडेचर्ड लेबर लीग के रेव० पियर्सन के साथ मिलकर भारत में कुली भर्ती करने वाले अरकाटियों के तौर-तरीकों और हथकण्डों की जानकारी ली और उसके बाद फीजी में भारतीय कुलियों की स्थिति का स्वयं जायजा लेने के लिए रवाना हो गए। फीजी में उनका बड़ा स्वागत हुआ। उन्होंने फीजी में स्थान-स्थान पर जाकर गिरमिटिया मजदूरों की दशा को जाना। गन्ने के खेतों के अनैतिक जीवन कुलम्बरों, ओवरसियरों के अत्याचार और भारतीय मजदूरों के दयनीय जीवन को देखकर उनका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने अपनी विस्तृत रिपोर्ट में इन बुराइयों का विशद् विवरण दिया और साथ ही भारतीय मजदूरों के परिश्रम और साहस की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उनकी रिपोर्ट के कारण भारत भर में गिरमिट-प्रथा के विरुद्ध आंदोलन शुरू हुआ और अन्ततः सरकार को उसे समाप्त करने का निर्णय लेना पड़ा।

एंड्रूज ने दूसरी बार 1917 में फीजी की यात्रा की। इस बार उन्होंने जो रिपोर्ट लिखी, उसमें उन्होंने तीन-चार बातों पर ज्यादा ज़ोर दिया। पहली यह थी कि भारतीय बच्चों के लिए स्कूलों की बहुत कमी है, उनके लिए शिक्षा की

अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए। दूसरे, उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि महायुद्ध के कारण कीमतें बहुत बढ़ गई हैं, इसलिए पारिश्रमिक भी बढ़ना चाहिए। तीसरे, गन्ने के खेतों में भारतीय मजदूरों पर बहुत अत्याचार होता है, उसे बन्द किया जाना चाहिए। इन सब बुराइयों को दूर करने के लिए उन्होंने सी० एस० आर० कम्पनी पर भी बहुत ज़ोर डाला। कई भाषण दिए। पत्र-पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित करवाए। इन सब प्रयत्नों का बड़ा फलदायक प्रभाव पड़ा और अन्ततः 21 जनवरी, 1920 को सभी शर्तबंद कुली स्वतंत्र कर दिए गए।

1926 में एंड्रूज एक बार फिर फीजी आए। इस बार उन्होंने फीजी में रहने वाली सभी जातियों के लोगों की भलाई के कार्य किये। सभी जातियों के लोग उनसे मित्रता रखने लगे। उन्होंने फीजी में शिक्षा के प्रसार के लिए काफी कार्य किया।

गिरमिट के काले दिनों में फीजी के भारतवंशियों के लिए एक ऐसा समय आया, जब उन्हें हिन्दुस्तानी बैरिस्टर की नितांत आवश्यकता अनुभव हुई, क्योंकि अन्य बैरिस्टर भारतवंशियों के साथ कुछ धोखाधड़ी कर जाते थे और भारतवंशी अपने अच्छे-खासे मुकदमे भी हार जाया करते थे। श्रीयुत रूपराम जी के सभापतित्व में एक सभा हुई और यह निर्णय हुआ कि गाँधीजी को एक पत्र लिखकर कोई सुयोग्य बैरिस्टर भेजने के लिए निवेदन किया जाए। तं० तोताराम जी को पत्र लिखने का भार सौंपा गया। श्रावण वदी 8, संवत् 1967 को गाँधीजी को पत्र लिखा गया। गाँधीजी ने इस पत्र के कुछ अंश को समाचारपत्रों में छपवा दिया। गाँधीजी के छपाए हुए लेख को 'इण्डियन ओपीनियम' में डा० मणिलाल गाँधी ने पढ़ा। वे उस समय मारीशस में काम कर रहे थे। उन्होंने तुरंत अपनी स्वीकृति का पत्र फीजी निवासी भारतीयों को लिखा। 27 अगस्त, 1912 को मणिलालजी सूवा पहुंच गए। फीजी के प्रवासी भारतीयों को बड़ी प्रसन्नता हुई। मणिलाल जी का बड़ा स्वागत हुआ।

मणिलालजी ने अपने प्रवास-काल में फीजियन और भारतीय लोगों की समान रूप से नि.स्वार्थ सेवा की और उन्हें कानूनी सहायता प्रदान की।

गिरमिट प्रथा की समाप्ति से काफी पहले ही फीजी के भारतीयों में शिक्षा के प्रति काफी चेतना आ गई थी। वे ईसाई मिशनों द्वारा चलाए जाने वाले स्कूलों में अपने बच्चों को पढ़ाने लगे थे। वर्तमान शताब्दी के पहले दशक में ही कुछ

जनरत्न पं विष्णुदेव
जिन्होंने फीजी के विकास
में महत्वपूर्ण योग दिया ।

भारतीय युवक अच्छी शिक्षा प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने यहाँ के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में काम करना शुरू कर दिया था। 'फीजी समाचार' नामक पत्र पहले दशक में ही निकलने लगा था। परन्तु भारतीय बच्चों के लिए भारतीय स्कूल का अभाव था। पहली भारतीय पाठशाला खोलने का श्रेय मिला पंडित बद्री महाराज को। पंडित जी स्वयं अच्छे पढ़े-लिखे थे और शिक्षा को जीवन का आवश्यक अंग मानते थे। उनका विचार था कि भारतीय बच्चों को सच्ची शिक्षा ईसाई स्कूलों में नहीं, अपितु भारतीय पाठशालाओं में ही मिल सकती है। इसी उद्देश्य को लेकर उन्होंने भारतीयों के लिए सबसे पहली पाठशाला वाईरूकुरा में स्थापित की। 1916 में फीजी-भर में केवल यही एक भारतीय पाठशाला थी, परन्तु उससे श्रीगणेश बहुत अच्छा हुआ। उससे प्रेरणा पाकर वर्ष-प्रतिवर्ष, पाठशालाओं की संख्या बढ़ती गई और इस समय फीजी में तीन सौ से ऊपर भारतीय पाठशालाएं होंगी।

पं० बद्री महाराज प्रथम भारतीय थे जो फीजी की व्यवस्थापिका सभा के सदस्य बने। उनका परिवार आज भी काफी सम्पन्न परिवारों में से है और सारे फीजी में फैला हुआ है। उनके सुपुत्र स्व० पं० राघवानन्द फीजी के जाने-माने भारतवंशी थे। व्यावसायिक तथा धार्मिक क्षेत्र में काफी अग्रणी हैं और रातू सर लाला सुकुना के नजदीक के सहयोगी रह चुके हैं। अनेक बार फीजी की आर्य प्रतिनिधि प्रादेशिक सभा के अध्यक्ष रह चुके हैं।

फीजी के भारतवंशियों में शिक्षा की सुविधा का जो बीज पंडित बद्री महाराज जैसे शिक्षा-प्रेमियों ने दूसरे दशक में बोया था, उसे शाखा-प्रशाखों में विकसित करने का श्रेय उन अनेक भारतवंशियों को है, जिन्होंने तन, मन और धन से इस क्षेत्र में पूरा योगदान दिया है। उनमें से पंडित अमीचन्द और पं० विष्णुदेव के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने आर्यसमाज के माध्यम से फीजी में शिक्षा और विशेष रूप से स्त्री-शिक्षा तथा भारतीय संस्कृति का प्रचार किया। पं० अमीचन्द का जन्म और उनकी शिक्षा-दीक्षा यद्यपि भारत में हुई थी, परन्तु उनका सारा उपयोग फीजी के लिए और फीजी के भारतवंशी समाज में शिक्षा और संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए ही हुआ।

पं० अमीचन्द जी की प्रेरणा से फीजी में अनेक संस्थाएं बनीं। उनमें भारत हितचिंतक सभा का नाम उल्लेखनीय है। इस सभा के अन्तर्गत भारतीय संगीत समिति की स्थापना हुई। इस समिति के प्रयत्नों से फीजी में भारतीय संगीत के प्रति रुचि उत्पन्न हुई। समिति की तरफ से प्रति वर्ष होलिकोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था।

पं० अमीचन्द ने फीजी के किसान संघ और मजदूर संगठनों की जो सेवा की वह भी उल्लेखनीय है। आप कई वर्षों तक लेबर एडवाइजरी बोर्ड के सदस्य रहे। आप इण्डस्ट्रियल वर्क्स कांग्रेस के भी अध्यक्ष रहे। मजदूर संगठन के क्षेत्र में आपकी लोकप्रियता इतनी बढ़ गई थी कि भारतीय मजदूरों की हालत का अध्ययन करने के लिए फीजी से जाने वाले एक कमीशन में आप न्यू केलेडोनिया भी भेजे गए।

फीजी के आर्य समाज ने अनेक कर्मठ कार्यकर्त्ता उत्पन्न किए, जिन्होंने अपनी मातृभूमि फीजी की तन-मन-धन से भरसक सेवा की। यहां एक ऐसे लोकप्रिय नेता का जीवन संक्षेप में दिया जाता है, जिन्हें लोग उनके कार्यों से प्रभावित होकर

जनरत्न कहने लगे थे। वे थे आनरेबल पं० विष्णुदेव ओ० बी० ई०।

पं० विष्णुदेव का जन्म फीजी के नवुआ कस्बे में 19 जुलाई, 1900 ई० को हुआ था। उनके पिता पं० हरगोविन्द दूबे एक जाने-माने सज्जन थे। पं० विष्णुदेव ने सूवा में अपनी प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के बाद फीजी के इमीग्रेशन विभाग में और बाद में सूवा कोर्ट हाउस में क्लर्क के रूप में कार्य किया। न्यूज़ीलैंड से लौटने के बाद 1925 में वे एम० एन० नायडू स्कूल, नामोली, लौतांका में अध्यापक बने।

सन् 1928 में जब फीजी के भारतीयों को पहली बार लेजिस्लेटिव कौंसिल के लिए एक सदस्य चुनकर भेजने का अधिकार मिला तो उन्होंने भारी बहुमत से पं० विष्णुदेव को अपना प्रतिनिधि चुना। उसके बाद वे लगातार 25 वर्षों तक लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य रहे। तदुपरान्त स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण वे इस कार्य से निवृत्त हो गए। परन्तु इनकी इस लम्बी सेवा के लिए उन्हें 'आनरेबल' की पदवी से सम्मानित किया गया।

1953 में पंडित विष्णुदेव को भारतीय समाज के प्रतिनिधि के रूप में महारानी एलिज़ाबेथ द्वितीय के राज्याभिषेक समारोह में शामिल होने के लिए लंदन भेजा गया। वापसी-यात्रा में उन्होंने भारत का भी व्यापक भ्रमण किया। उसी समय दिल्ली में मेरा उनसे प्रथम परिचय हुआ।

पंडितजी की सेवाओं के लिए उन्हें 1925 में ओ० बी० ई० उपाधि प्रदान की गई और इसी वर्ष भारतीय समाज ने उनको 'जनरत्न' के सम्मान से विभूषित किया।

पंडित जी काफी वर्षों तक विशाल भारतीय कम्पनी तथा इण्डियन प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग कम्पनी के मैनेजिंग डायरेक्टर रहे। उन्होंने 'फीजी समाचार' नामक साप्ताहिक पत्रिका का भी काफी समय तक सफलतापूर्वक सम्पादन किया। 9 मई, 1968 को इस नररत्न का देहावसान हो गया। उनकी पुण्यस्मृति में सूवा शहर के रायवांगा क्षेत्र में पं० विष्णुदेव मेमोरियल स्कूल की स्थापना की गई।

जिन दिनों पं० अमीचन्द और विष्णुदेव फीजी देश और वहां के भारतवंशियों की प्रगति में संलग्न थे, उन्हीं दिनों फीजियन समाज के एक सर्वप्रिय और सर्वसम्मानित व्यक्ति सर लाला सुकुना भी अपने देश और समाज के हितों के लिए

कार्यरत थे। फीजियन समाज की प्रगति का बहुत कुछ श्रेय लाला सुकुना को ही जाता है।

उन्होंने आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी से बैरिस्टरी पास की। इंगलैंड से लौटने के बाद में वे कोलोनियल सिविल सर्विस में भर्ती हो गए और बहुत समय तक डिस्ट्रिक्ट कमिश्नर बने रहे। तत्पश्चात् वे फीजी की विधान सभा के सदस्य बने।

वे फीजियन अफेयर्स विभाग के सेक्रेटरी रहे। इस पद पर कार्य करते हुए नेटिवलैंड ट्रस्ट कमीशन के चेयरमैन भी रहे। चेयरमैन के रूप में समस्त फीजियन भूमि उनके नियन्त्रण में रही।

लाला सुकुना फीजी समाज के एक सुशिक्षित व्यक्ति थे। फीजियन समाज को उनकी सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने फीजियन लोगों की सारी ज़मीन को एक ट्रस्ट के नीचे ला दिया और यह तय करवा दिया कि इस जमीन (नेटिवलैंड) को कोई भी व्यक्ति न तो खरीद सकता है और न किसी प्रकार से ले या छीन सकता है। यह ज़मीन समस्त फीजियन समाज की है, किसी व्यक्ति विशेष की नहीं। इसकी आय फीजियन लोगों की 'मतंगली' पद्धति के अनुसार विभिन्न मतंगलियों (बड़ा परिवार) के सदस्यों को बांट दी जाती है। इस प्रकार भूमि का स्वामित्व किसी जाति-विशेष के हाथों में न रहना फीजी की भूमि-व्यवस्था की एक विशेषता है और यहां की अर्थ-व्यवस्था का एक बड़ा नाज़ुक पहलू है।

इस समय फीजियन समाज के प्रमुख नेताओं में हैं फीजी के गवर्नर जनरल रातू सर जार्ज दकम्वाऊ और प्रधानमन्त्री रातू सर कामिसेसे मारा।

रातू सर जार्ज दकम्वाऊ का जन्म फीजी के एक सामन्त कुल में 6 नवम्बर, 1912 को सूवा में हुआ था। उनके पिता थे रातू पौपी एपेली सेनी लोली दकम्वाऊ। उनकी प्राथमिक शिक्षा लेवूका में हुई। उसके बाद उन्होंने क्वीन विक्टोरिया स्कूल, नेविंग्टन कालेज और न्यू साउथ वेल्स में तथा न्यूज़ीलैंड के वंगानूई टेक्निकल कालेज में उच्च शिक्षा प्राप्त की।

उन्होंने फीजी की सिविल सेना में 1936 में प्रवेश किया। वे पहले तीन वर्ष तक क्लर्क के पद पर रहे। फिर 1949-42 में रोको और फीजियन मजिस्ट्रेट बने। उसके पश्चात् सब इन्सपेक्टर पुलिस और विभिन्न जिलों में रोको तुई के पद पर रहे। 1953 में उन्होंने महारानी एलिज़ाबेथ द्वितीय के राज्याभिषेक समारोह में फीजी के प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। 1956 से 1962 तक आप ताइलेवू के

फीजी के प्रधानमंत्री
रातू कामिसेसे मारा—
जिन्हें प्यार से
रातू मारा कहा जाता है।

रोको तुईं और पूर्वी क्षेत्र के आर्थिक विकास-अधिकारी रहे। 1962 में आप नेटिवलैंड्स कमिश्नर और सम्पर्क अधिकारी बने तथा लैंड्स डेवलपमेंट अथारिटी और फीजियन अफेयर्स बोर्ड में रहे। फीजी की स्वतन्त्रता के बाद आप जनवरी में अप्रैल 1972 तक फीजियन अफेयर्स के मंत्री और मई 1972 से जनवरी 1973 तक बिना विभाग के मन्त्री रहे। 13 जनवरी, 1973 से आप फीजी के प्रथम गवर्नर जनरल हैं।

फीजी के प्रधानमन्त्री हैं रातू सर कामिसेसे मारा, जिन्हें प्यार से रातू मारा कहा जाता है। ये फीजी की लोकसभा में एलायन्स पार्टी के नेता हैं। ये अत्यन्त लोकप्रिय व्यक्ति हैं और फीजी की सभी जातियों के लोग इनका सम्मान करते हैं।

रातू मारा का जन्म 13 मई, 1920 को फीजी के लाऊ द्वीप में हुआ था। लाऊ द्वीप वाऊ द्वीप की तरह ही वड़े सामन्तों का द्वीप है। प्रारम्भ शिक्षा फीजी में प्राप्त करने के बाद रातू मारा ने ओटैगो विश्वविद्यालय में डाक्टरी की शिक्षा ग्रहण की। इसके बाद उन्होंने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से एम० ए०, लन्दन स्कूल आफ इक्नॉमिक्स से अर्थशास्त्र और सामाजिक प्रशासन में डिप्लोमा प्राप्त किया। प्रारम्भ में 1959-60 के दौरान उन्होंने ज़िला अधिकारी और फीजियन अफेयर्स विभाग में सहायक उपसचिव के पद पर काम किया। 1961 से पूर्व वे अंचल के कमिश्नर रहे। 1953 से वे लेजिस्लेटिव कौंसिल के फीजियन सदस्य और उसके बाद 1963 से उसके निर्वाचित सदस्य रहे। 1965 में उन्होंने लन्दन में आयोजित संविधान सम्मेलन में फीजी के शिष्टमण्डल का नेतृत्व किया। उसी वर्ष उन्होंने एलायंस पार्टी की स्थापना की। 1966 में वे पुनर्गठित लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य निर्वाचित हुए। 10 अक्तूबर, 1970 से वे फीजी के प्रधानमन्त्री और विदेशमन्त्री हैं। तीन बार भारत की यात्रा कर चुके हैं। उन्होंने भारत में विकास की विभिन्न योजनाओं का अवलोकन किया था और वे भारत की प्रगति से वहुत प्रभावित हुए थे। उनका विचार है कि भारत के अनुभव का फीजी में लाभ उठाया जा सकता है।

# 11

## फीजी किधर ?

अक्टूबर 1970 ई० तक ब्रिटिश उपनिवेश बना रहने वाला फीजी आज एक प्रभुता-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक राज्य तो है ही, अपितु पिछले कुछ वर्षों में इसके प्रभुत्व और महत्व में जो इज़ाफ़ा हुआ है वह प्रशंसनीय ही नहीं, विचारोत्पादक भी है।

यदि पिछले सौ साल के परिवर्तनों को सरसरी नज़र से देखें तो एक महान परिवर्तन का आभास हुए बिना नहीं रह सकता। करीब सौ साल पहले पांच लाख प्राणियों का यह द्वीप-समूह आपस में लगातार युद्ध करना और मारकाट करना ही जीवन का परम धर्म समझता रहा और ठीक एक शताब्दी में ही यह 300 द्वीपों में दूर तक बिखरा हुआ समूह 10 या 12 विभिन्न जातियों के लोगों से बसा हुआ और भिन्न-भिन्न जनधाराओं का समूह और उतने ही विभिन्न भाषाभाषियों के समाज का सुदृढ़ राष्ट्र बन बैठा। पोलीनेशियन, मेलेनेशियन, माइक्रोनिशियन आदि के अतिरिक्त चीनी, अंग्रेजी और हिंदी, उर्दू, तलिम, तेलुगु, पंजाबी और गुजराती आदि भाषाओं की विभिन्नता ने ऐसे समाज के संगठन को एक इन्द्रधनुषी रूप दे दिया है जो विभाजन, गृह-कलह, विद्रोह और दुःख की दुर्भाग्यपूर्ण भावनाओं से प्रेरित नहीं है।

कोई-कोई टापू तो एक दूसरे से 200 से 300 मील तक दूरी पर स्थित है। इस कारण आपसी सम्पर्क भी थोड़ा-सा ही है और छोटी-छोटी काठ को कुरेद कर और काटकर बनाई गई पतली पाल से चालित नावों द्वारा आवागमन आपसी सम्पर्कों को और भी कठिन और दुर्लभ-सा बना देता था। इसी नीले आसमान में सितारों की तरह बिखरे इन टापुओं की यातायात की दुनिया भी ऐसी बदली है कि कोई भी बड़ा टापू 172 घण्टे की हवाई उड़ान से अधिक दूर नहीं। उन सब पर हवाई अड्डे एवं हवाई यात्रा की सुविधाएं बन गई हैं। कुछ बड़े-बड़े होटलों ने तो अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे से होटल तक हैलीकोप्टर सेवाए भी शुरू कर दी हैं। द्वीपों

के बीच अब ऊर्जा से चालित तेज़ गति की नावें हैं, जिनमें 300 द्वीपों में बिखरा हुआ यह समुद्री क्षेत्र सिमटकर 5 लाख प्राणियों का एक देश बन गया है, सारी विभिन्नताओं के बावजूद व सारी विषमताओं के होते हुए भी।

इस निर्माण और विकास की समग्रक्रान्ति के प्रत्येक रुख पर यदि हम दृष्टि-पात करें तो इसकी सफलता के रहस्य का कुछ आभास हो सकेगा। एक बात यही लीजिए कि इस देश के निवासी 100 साल पहले (बल्कि उससे भी कम वर्ष पहले) मनुष्याहारी रहे हों और ऐसी अमानुषिक प्रथाओं के शिकार रहे हों कि हर सामन्त के घर के चारों ओर कोनों के खम्भों के नीचे चार मनुष्य ज़िन्दा गाड़ दिये जाते हों, उस जाति और देश में आज हत्या और कत्ल आदि की घटनायें नगणय-सी हो जायें तो कोई कम आश्चर्य की बात नहीं। सारे संसार में जब संहार और हिंसा इतनी प्रचुर मात्रा में बढ़ रही हो, उस समय प्रशान्त महासागर के इस कोने में नर-भक्षी लोग हिंसा से इतनी दूर हट जायें इसे सामाजिक क्रांति न कहें तो और क्या कहें ? कत्ल की वारदात सुनने में ही नहीं आती, विशेष तौर पर आदिवासी फीजियन लोगों में। अलबत्ता चोरी, छीना-झपटी और यौन सम्बंध अपराधों की संख्या कुछ अरसे से बढ़ रही है, जिसका एकमात्र कारण पाश्चात्य सभ्यता के प्रतीक उनके सैक्स और हिंसा भरे फिल्म हैं और यौन-भावनाओं को भड़काते हैं लाखों टूरिस्ट। इन यूरोपीय टूरिस्टों के लिए फीजी निवासी केवल मनोरंजन के साधन बनते जा रहे हैं। इस सैलानियों के स्वर्ग की फ़िज़ा बदलने लगी है। आज फीजी के अतिथि-सत्कार, सरल व्यवहार और बांटकर खाने की प्रवृत्ति पर यूरोप की डालर-संस्कृति की काली परछायीं पड़ने लगी है। टूरिज्म के इस विषाक्त परिणामों से बचाव करने की आवाज़ें धीमी-सी पड़ती जा रही हैं। राष्ट्र के बहु-मुखी विकास में नई चकाचौंध व्यवस्था का उतना महत्व नहीं है। विदेशी मुद्रा की एक समुद्री लहर टूरिस्ट उद्योग द्वारा आती और दूसरी लहर के साथ आस-पास के बड़े देशों में लौट सी जाती है।

फीजी की फ़िज़ा के बदलने का सच्चा स्वरूप तो यह है कि उसकी बहुरंगी वेशभूपा एकदम भिन्न है। अनेक भाषाओं और इतनी दूर-दूर बिखरे पड़े टापुओं के के होते हुए आपसी झगड़ों के लम्बे इतिहास के बावजूद, आज प्रशान्त का फीजी, संसार के विकसित देशों को एक अमिट उदाहरण बनकर आदर्श का दीप दिखा रहा है। गर्मागर्म राजनीतिक बहसों के बावजूद वातावरण शान्त, हिंसा और

झगड़े-फसाद से मुक्त बना हुआ है।

बात यहीं तक होती तो भी कोई बात थी। सबसे बड़ी बात तो यह है कि प्रशांत महासागर के सभी स्वतंत्र और अर्धस्वतंत्र एवं पराधीन टापू देशों को एक सूत्र में बाँध कर संघीय संज्ञा अथवा एक क्षेत्रीय इकाई का रूप दे देना विश्व के इतिहास के लिए एक महत्वपूर्ण घटना है और संसार के इतिहासकारों और समाज-शास्त्रियों के लिए गहन अध्ययन का विषय।

पिछले दिनों फीजी की पार्लियामेंट द्वारा पारित एक एक्ट को वहां के अटर्नी जनरल ने फीजी की प्रगति का एक विशाल चरण कहकर संबोधित किया है। इस एक्ट द्वारा फीजी द्वीपों के चारों ओर 200 मील तक का समुद्र अब फीजी का आर्थिक क्षेत्र समझा जायेगा, जिसके द्वारा प्रशान्त महासागर के इस सम्पूर्ण क्षेत्र का समुद्री धन चाहे खनिज हो या मछली परिवार उसपर फीजी का ही अधिकार होगा। अब तक फीजी की राजसत्ता का प्रभुत्व हर टापू से 12 मील दूर तक के समुद्र पर था और बाकी संपदा से संपूर्ण समुद्र में विकसित विदेशी देशों के महान् पोत बड़ी मछलियों का शिकार करते फिरते थे। परंतु अब फीजी सरकार के इस ऐतिहासिक और साहसी कदम ने फीजी के बिखरे आठ सौ टापुओं को एक इकाई मानकर उसके चारों ओर 12 मील तक अपनी सम्पूर्ण प्रभुता का ऐलान कर दिया है। सात हजार पैंसठ वर्ग मील धरती के राष्ट्र का स्वामित्व अब 56 हजार आठ सौ वर्गमील तक फैले समुद्री इलाके पर गया है। इससे राष्ट्र का क्षेत्र-फल 64 हजार वर्गमील तक फैले समुद्री इलाके पर हो गया है। इससे राष्ट्र का क्षेत्रफल तो बढ़ा ही, साथ ही धन-धान्य और समृद्धि के नये साधन भी सुलभ हो गये।

इस महत्वपूर्ण विस्तार के दूसरे चरण का विशाल रूप जो सामने आया है, वह है इस वर्तमान क्षेत्रफल के चारों ओर 200 मील तक का समुद्री इलाका भी फीजी का आर्थिक क्षेत्र घोषित हो गया है, जिसके कारण प्रशांत महासागर का अकूत एवं टूना मछली का भंडार फीजी के स्वामित्व में आ गया है। इसी के साथ महासागर की तह में बैठी खनिज सामाग्री संसार की औद्योगिक क्रांति में एक नया आयाम जोड़ सकेगी।

70 हजार वर्गमील की देश की सीमा हो जाने और उसके इर्द-गिर्द 200 मील तक के समुद्र पर आर्थिक अधिकार हो जाने से फीजी संसार के गिने-चुने राष्ट्रों की

पंक्ति में शामिल हो गया है। महत्व केवल विस्तार का नहीं, उसकी गहराई का भी है। यही वह समुद्री इलाका है जिसे रत्नागर्भा कहा जा सकता है। इसकी तहों में अमूल्य खनिजों का भंडार है, जिस पर संसार के उन्नत देशों की गिद्ध दृष्टि गड़ी हुई है। इसके आसपास के इसी प्रशांत महासागर में अमरीकी-रूसी-जापानी जहाज दौड़ते-फिरते हैं। कुछ असंख्य मत्स्यकर्मी खाद्य मत्स्य के पीछे और कुछ समुद्र की सतह में बैठे अथाह खनिज सामग्री के लिए लालायित हैं। और अब संसार भर के देशों में होड़ लगी हुई है कि अंतर्राष्ट्रीय समुद्री संस्थान का केंद्र कहां हो? परंतु ऐसा लगता है कि "यह अंतर्राष्ट्रीय प्राधिकरण कहीं भी हो, उसका केंद्र विन्दु प्रशान्त महासागर में और फीजी में सदैव रहेगा।

सौ साल का ब्रिटिश उपनिवेश, सामंती परंपराओं का परिवेश पहने एक और नया परिवर्तन ला रहा है। इससे नव शिक्षित युवक-युवतियाँ पुरानी सड़ी-गली व्यवस्था से दूर हटकर आधुनिकता की ओर बढ़ रहे हैं। हिंदुस्तानी और फीजियन दोनों युवा नाच-गृहों और डिस्को में प्राय: हाथ में हाथ डालकर प्रवेश करते हैं और छाती से छाती मिलाकर नृत्यमग्न होते हैं। नया संगीत जन्म ले रहा है। शब्द पोलीनेशियन, धुन हिंदी फिल्मों की। एक नया नेतृत्व उभर रहा है जो सामंती अधिकार को चुनौती है, लिबरल रूढ़िवादी नहीं।

आज़ादी के तुरंत पश्चात् मंत्रिमंडल में तीन अंग्रेज मंत्री थे। आठ वर्षों के बाद मंत्रिमंडल में एक भी अंग्रेज नहीं रहा। फीजी स्थित ब्रिटिश हाई कमिश्नर राजनयिक मंडल में सर्वज्ञाता समझा जाता था और आस्ट्रेलियन हाई कमिश्नर सबसे अधिक सहायता का स्रोत। स्वतंत्रता के उपरांत पांच वर्षों तक भारतीय हाई कमिश्नर का बड़ा बोलबाला रहा। उसका नाम और जैसे वातावरण का आगमन हो गया था, पर आज हवा दूसरी ओर से बह उठी है। प्रधानमंत्री जो सदा से ही फीजी की चीनी आबादी के परिश्रम और लगन से प्रभावित रहे हैं, कम्युनिस्ट चीन को प्रेरणास्रोत समझ रहे हैं। उनकी चीन-यात्रा और चीन की सहायता के सुझावों ने फीजी के नेतृत्व को अपनी ओर आकर्षित किया है। व्यापार के द्वार खुल गये हैं। यद्यपि फीजी में चीनी आबादी आठ प्रतिशत ही है, फिर भी विशेष बात यह है कि फीजियन (पोलीनेशियन) सामाजिक संगठन और चीनी कम्यून में एक सामंजस्य और समता फीजी को चीन की ओर आकर्षित कर रही है। परन्तु दुःख यह है कि आज भारत फीजी के सौ साल पुराने स्नेह स्निग्ध संबंध खट्टे

से पड़ गये हैं।

सामरिक तौर से और सुरक्षा के दृष्टिकोण से फीजी का प्रशांत महासागर में ही नहीं, संसार की शांति-रक्षा के ख्याल से भी महत्व बढ़ रहा है। अमरीकी पनडुब्बियां इसके चारों ओर समुद्री गहराइयों में दौड़ती-फिरती हैं—रूसी पोत भी समुद्री विज्ञान-शास्त्र के शोध के लिये लंबी यात्रायें कर रहे हैं—अमरीकी नाविक शक्ति संगठन को आधुनिक रूप दिया जा रहा है। सोवियत संघ का खतरा फीजी को नई शक्ति दे रहा है—उधर जापान इसे अपने आर्थिक बढ़ाव का केन्द्र-बिंदु समझने लगा है—देखें ऊंट किस करवट बैठता है ?

• • •

## 'देश और निवासी' माला की प्रकाशित पुस्तकें



इंडोनेशिया, अफ्रीका, मारिशस, थाईलैंड, मिस्र, बर्मा, इसराइल, इटली, जर्मनी, भूटान, सिक्किम, रूस, अमेरिका, ब्रिटेन, जापान, श्रीलंका, नेपाल, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, चीन, फ्रांस, चेकोस्लोवाकिया, कनाडा, बंगलादेश, आस्ट्रेलिया